सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 1

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाग 1, 2

पञ्चाध्यायी प्रवचन

—[*******]—

卐

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

प्रबन्ध-सम्पादक :

वैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार कड़तला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पञ्चाध्यायी-प्रवचन भाग १, २

[प्रथम भाग]

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी]

पञ्चाध्यायावयवं मम कर्तुर्ग्रन्थराजमात्मवशात् ।
अर्थालोकनिदानं यस्य वचस्तंस्तुवे महावीरम् ॥ १ ॥

ग्रन्थराजके करनेका ग्रन्थकर्ताका संकल्प—पाँच अध्याय जिसके अवयव हैं, ऐसे इस ग्रन्थराजको अपनी योग्यतासे स्ववश होकर रच रहा हूं। इस ग्रन्थको रचता हुआ मेरेको जो अर्थ आलोक प्राप्त हुआ है, पदार्थोंका प्रकाश प्राप्त हुआ है, वह सब महावीरके मूल वचनोंकी परम्परासे प्राप्त हुआ है। तो जिनके वचन मेरे पदार्थोंके प्रकाशमें मूल कारण हैं उन महावीर तीर्थङ्करका में स्तवन करता हूं। इस ग्रन्थका नाम ग्रन्थराज प्रतीत होता है और पञ्चाध्यायवयव यह उसका विशेषण है अर्थात् जिसको ५ अध्यायोंमें कहा जायगा। इसके दो ही अध्याय बन सके हैं, आगे और ३ अध्याय बनाये जाने थे किन्तु नहीं हो सके। पर ग्रन्थकर्ताका आशय इस ग्रन्थ को ५ अध्यायोंमें रचनेका था, इसी कारण यह ग्रन्थराज कहलाया। इस ग्रन्थके कर्ता कौन हैं ? इस विषयमें यद्यपि आज वक्त थोड़ा सा विवाद है लेकिन प्राय: करके यह अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थराजके कर्ता श्री अमृतचन्द्राचार्य हैं जो कि समयसार, प्रवचनसार आदिकके रचयिता हैं। वे ग्रन्थ तो अमृतचन्द्र जीके ही रचे हुए हैं और वे प्रमाणीक हैं। कुछ ग्रन्थोंके अन्तमें स्वयं सूरि जीने अपना नामोल्लेख भी किया है। अब उनकी जो शैली उन ग्रन्थोंमें रही आई वही शैली इस ग्रंथमें भी पाई जाती है। यह अनुमान है कि इस ग्रन्थराजके कर्ता भी श्री अमृतचन्द्र जी सूरि हैं। और, किन्हींकी खोजके अनुसार इसके कर्ता पं–राजमल जी बताये जाते हैं। पर यह विषय इतिहासके अन्वेषक विद्वानोंका है, पर बहुमत यह है कि इसके रचयिता श्री अमृतचन्द्र जी सूरि हैं।

मङ्गलाचरण और उससे ग्रन्थकी प्रमाणिकताका संकेत—ग्रन्थकर्ता यहाँ महावीर स्वामीका स्तवनरूप मंगलाचरण कर रहे हैं। गुणोंका स्तवन करना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मंगल है। जैसे गुणोंका स्मरण करना, इष्टदेवका स्मरण करना अथवा इष्टदेवका नमस्कार करना मंगल है, इसी प्रकार गुणस्तवन भी मंगल है। और ऐसा मंगल ग्रन्थके आदिमें तो प्राय: गाया ही जाना चाहिए, और अन्तमें भी किया जाता है, पर मंगल तो मंगल ही है, इसे मध्यमें भी यथास्थान किया जा सकता है। इस मंगलाचरणसे यह प्रतीत होता है कि ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थकी प्रमाणिकताके लिए अथवा अपने ज्ञानप्रकाशके स्रोतकी कृतज्ञता प्रकट कपनेके लिए महावीर स्वामीका स्तवन किया है। आज जो जैन शासनका प्रकाश है उसका मूल कारण महावीर प्रभु हैं। उनके केवलज्ञानके समय समयरर होने वाली दिव्यध्वनिको सुनकर गणधरदेवने द्वादसांगकी रचना की और गणधरदेवका अध्ययन पाकर अन्य आचार्योंने उस परम्पराको बढ़ाया और उस ही परम्परामें यह ग्रन्थ रचा जा रहा है। तो इस ग्रन्थकी प्रमाणिकता भी सिद्ध होती है। मूलमें किसीका बोध प्राप्त हो, वह मूल यदि प्रमाणभूत हैं तो आजका यह ग्रन्थ भी प्रमाणभूत बनता है। वैसे तो परीक्षा करके भी विद्वत्जनोंमें प्रमाणता आती है। जो तत्त्व बताया जा रहा है वह तत्त्व यदि प्रमाण सिद्ध है, प्रमाणसे कोई उसमें विरोध नहीं आता तब वह प्रमाणभूत है। यहाँ यह बात जाननी होगी कि जो प्रमाणभूत बात है उसकी समता उस मूल ध्वनिसे मिल जायगी। मूल ध्वनिमें बतायी हुई बात और यहाँ प्रमाणसे परखी हुई बात एक ही होगी क्योंकि जो सत्य है सो ही दिव्य ध्वनिमें प्रकट होता है, जो सत्य है वही पदार्थमें पाया जाता है। यह ग्रन्थ जितना कि आज कल उपलब्ध है करीब २००० श्लोकोंमें पाया जा रहा है, जिसमें २ अध्याय ही समाप्त हो पाये हैं। यदि यह पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता तो यह ग्रन्थराज अपने वास्तविक नामको और अधिकरूपसे प्रकट कर देता। अब भी जो इसमें विवेचन होगा उससे यह ग्रन्थराज ही सिद्ध होता है। ५ अध्यायोंमें ग्रन्थकर्ता एक एक विषयको मुख्य रूपसे कहने वाले थे। जैसे कि प्रथम अध्यायमें द्रव्य विभागों का वर्णन किया। द्रव्य, गुण पर्याय। इन सबका खूब परिक्षित ढंगसे विस्तृत वर्णन है। दूसरे अध्यायमें सम्यक्त्व क्या है और सम्यक्त्वके सम्बन्धमें परिचयके लिए जो जो कुछ बताना आवश्यक था उन सब तत्त्वोंको बताया है। इसी प्रकार आगेके तीन अध्यायोंमें भी उपयोगी तत्त्वोंका वर्णन करने वाला अभीष्ट था। तभी एक यौगिक रीतिसे इसका नाम पञ्चाध्यायी भी रखा गया है। अब वर्द्धमान स्वामीको नमस्कार करके अन्य भी तीर्थंकरों और परमेष्ठियोंको नमस्कार करते हैं।

शेषानपि तीर्थंकरानन्तसिद्धानहं नमामि समम्।
धर्माचार्याध्यापकसाधुविशिष्टान् मुनीश्वरान् वन्दे ॥२॥

शेष तीर्थंकरों अनन्त सिद्धों व आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठीको नमन—शेष तीर्थंकरोंको भी और अनन्त सिद्धोंको मैं एक साथ नमस्कार करता हूं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और जो धर्माचार्य हैं याने आचार्य, परमेष्ठी, अध्यापक अर्थात् उपाध्याय परमेष्ठी और साधुपरमेष्ठीकी मैं बन्दना करता हूं। यहाँ महावीर स्वामीके अतिरिक्त शेष तीर्थङ्कर शब्द कहकर ऋषभ आदिक २३ तीर्थङ्करोंका संकेत किया है क्योंकि आज इस अवसर्पिणी कालके चतुर्थकालमें जो तीर्थङ्कर हुए हैं उनमें वर्द्धमान प्रभु अन्तिम तीर्थङ्कर थे। १ ऋषभनाथ जी, २ अजीतनाथ जी, ३ सम्भवनाथ जी, ४ अभिनन्दन नाथ जी, ५ सुमतिनाथ जी, ६ श्री पद्मप्रभु जी, ७ श्री सुपार्श्वनाथ जी, ८ श्री चन्द्रप्रभु जी, ९ श्री पुष्पदन्त जी, १० श्री शीतलनाथ जी, ११ श्री श्रेयांशनाथ जी १२ श्री वासुपूज्य जी, १३ श्री विमलनाथ जी, १४ श्री अनन्तनाथ जी, १५ श्री धर्मनाथ जी, १६ श्री शान्तिनाथ जी, १७ श्री कुन्थनाथ जी, १८ श्री अरहनाथ जी, १९ मल्लनाथ जी, २० श्री मुनिसुव्रतनाथ जी, २१ श्री नमिनाथ जी, २२ श्री नेमि-नाथ जी, २३ श्री पार्श्वनाथ जी ये २३ तीर्थङ्कर हो चुके हैं। समस्त तीर्थङ्करोंकी ध्वनिमें तत्त्व स्वरूपके सम्बन्धमें एकसा ही वर्णन है। कारण यह है कि बताया वह गया है जो वस्तुमें पाया जाता है। तो ऐसी बात जो भी बतायगा, यदि तथ्यकी बात है वास्तवमें तो वह वर्णन एकसा ही होगा। तो यह एक समान वर्णन भी इस बातको सिद्ध करता है कि वस्तुस्वरूप इस प्रकार है। प्रत्येक तीर्थङ्करके समयमें उनके गणधर होते आते हैं। गणधर कहते हैं गणके ईशको, गणेशको। गणेश बड़े बुद्धिमान होते हैं, चार ज्ञानोंके धारी होते हैं, इसी कारण लोग किसी मंगलके प्रसंगमें गणेशका स्मरण करते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्करके समयमें अनेक गणधर होते आये। उनमें एक मुख्य गणधर होता है, दिव्य ध्वनिको सुनकर वह गणेश द्वादशाङ्गकी रचना करता है और उस परम्परासे फिर शासनका प्रसार होता है। परमेष्ठियोंका नाम तो अरहंत परमेष्ठी है, पर यहाँ तीर्थङ्करोंका स्मरण किया है। वे भी अरहंत हैं अतएव समस्त अरहंत परमेष्ठियोंका स्मरण जानना चाहिए। अरहंत उन्हें कहते हैं जो चार घातियाकर्म नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त कर चुके हैं और नियमसे अशरीर सिद्ध भगवान होंगे। उन अरहंतोंमें जो तीर्थङ्कर हुए हैं, जिनके पञ्च कल्याणक होता है अथवा तीन कल्याणक होते हैं, जिन्होंने पहिले दर्शन विशुद्धि आदिक षोडश भावनायें भायी थी, तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध किया था वे अब मुनि होकर, विशाल ज्ञानके धारी होकर जब १३ वें गुणस्थानमें आते हैं तो वे तीर्थङ्कर प्रयोगरूपसे कहलाने लगते हैं। तो तीर्थङ्करोंका स्मरण एक विशेषरूपसे किया, पर समझना चाहिए समस्त अरहंतों का स्मरण। समस्त अरहंतों और तीर्थङ्करोंके स्मरणके साथ ही यहाँ अनन्त सिद्ध को नमस्कार किया है। साथ ही करनेका ममलब यह है कि जैसे सिद्ध भगवान निष्कलंक हैं उसी प्रकार यह अरहंत आत्मा भी निष्कलंक है। केवल एक शरीर सम्बन्धके कारण ऊपरी ही अन्तर रह गया है। और, जितने ये पूज्य आत्मस्वरूप हैं वे सब एक साथ बंदन योग्य हैं। उनमें क्रमका विभाग नहीं पर वचनोंमें क्रम है। तो प्रथम अरहंत और सिद्धको नमस्कार करके अब शेष ३ परमेष्ठियोंको भी नमस्कार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया गया है। कोई भी गृहस्थ चाहे बालब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ हो, जब ज्ञानी और विरक्त होता है तो सर्व परिग्रहोंका परित्याग करके केवल आत्मसाधनाके लिये उद्यत होता है, वस्त्रमात्रका भी परिग्रह नहीं, रंचमात्र भी आरम्भ नहीं, केवल एक ही कार्य–निज ज्ञान स्वरूपको अपने उपयोगमें समा लेना, इस हीके लिये जो गृहस्थ निर्ग्रन्थ हुआ है वह साधु परमेष्ठी कहलाता है। उन अनेक साधुवोंमें जो अधिक योग्य सिद्ध होता है वह आचार्य परमेष्ठी कहलाता है, और वे आचार्यपरमेष्ठी उन विद्वान साधुवोंको अध्ययन करानेके लिए जिसे चुन लेते हैं उसे उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। ऐसे तीन प्रकारके गुरुवोंको मैं नमस्कार करता हूं।

जीयाज्जैनं शासनमनादिनिधनं सुवन्द्यमनवद्यम्।
यदपि च कुमताराातीनदयं धूमध्वजोपमं दहति ॥ ३ ॥

जैनशासनका जयवाद—जैनशासन जयवन्त रहे। जैनशासन अनादि अनन्त है। अच्छी तरह बंदने योग्य है। दोषोंसे सर्वथा रहित है और खोटे मतरूप शत्रुओंको निर्दय होता हुआ मानो अग्निकी तरह जलाने वाला है। यहाँ जैन शासनके जयवन्त होनेकी भावना की है। यों सदा जयवंत रहे। यों रहे कि जिस जैनशासनके प्रसादसे, जिस तत्त्वज्ञानके प्रसादसे, जिस अनादिकालसे लगे हुए सब सङ्कटोंको दूर करनेमें समर्थ होता है, संसारके सङ्कटोंसे मुक्त हो जाता है, अपनी शुद्ध आनन्दमयी अवस्थाको प्राप्त होता है वह जैनशासन जयवंत रहेगा। तो इसकी उपासनाके फलमें अनेक जीव संकटोंसे मुक्त होते रहेंगे। यह जैनशासन अनादि अनन्त है। न तो इसका आदि है न अन्त है। यद्यपि लोकव्यवहारमें प्रकट रूपमें कभी यह प्रकट रहा है कभी अप्रकट रहा है लेकिन यह अनादिसे प्रवाहरूप चला आया है। किसी समय जैनशासन का व्यवहार न भी रहेगा तो कुछ ही समय बाद इसके प्रवर्तक तीर्थंकर उत्पन्न होते रहते हैं। और, फिर एक समान ही जैसे पूर्वमें जैनशासन प्रवाहित था उसी तरह प्रवाहित होने लगता है। तो यों लोकव्यवहारकी अपेक्षा यह जैनशासन अनादि अनन्त है और वस्तुस्वरूपकी अपेक्षा चाहे लोकव्यवहारमें जैनशासनकी बात न भी रहे किन्तु वस्तुमें वह शासन तो निरन्तर रहता ही है।

जैनशासनका तात्पर्य—जैनशासनका अर्थ है—जिन्होंने रागद्वेषादिक कर्म शत्रुओंको जीत लिया है उन्हें कहते हैं जिन और ऐसे जिन प्रभुके द्वारा जो बताया गया, प्रकट किया गया है उसे कहते हैं जैन। ऐसा शासन जो जिनेन्द्र देवके द्वारा प्रकट हुआ है, शासन कहते हैं उसे जिसमें आत्मा शासित रहे, संयमित रहे, संयत रह सके, जिसके कारण यह अपने स्वभावकी ओर आये। ऐसे अन्तःज्ञान श्रद्धान और आचरणको जैन कहते हैं। यह जैनशासन अनादिनिधन है और इसकी उपासनासे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनेक जीव मुक्त हुए हैं और इसकी उपासनासे ही मुक्त होते रहेंगे। अतएव वह भले प्रकार बंदन करने योग्य है। बंदन करनेका कारण यह भी है कि यह निर्दोष है। इस जैनशासनमें कहीं भी कोई दोष नहीं है। अनेकान्त प्रक्रियापर आधारित और आत्माके सहज स्वभावमें ले जानेके लिए स्थिर रखनेके लिए जो आचार विचार बताया गया है वह सब निर्दोष है। वह कैसे निर्दोष है ? यह प्रकरण बहुत लम्बा है और एक एक विषयको लेकर इस प्रकरणका विवरण करनेसे अनवद्यताका मर्म ध्यानमें आयगा। सो इसी ग्रन्थमें इसकी अनवद्यताको बताया जायगा और अनेक सिद्धान्त ग्रन्थोंमें इस जैनशासनकी निर्दोषता भले प्रकार बताई गई है। यह जैन शासन सब जनोंका हित करने वाला है। सुबुद्धि सम्यग्ज्ञान यथार्थ परिचय, आत्म-स्वरूपका यथार्थ श्रद्धान यही सब तो जैनशासन है। इसके विरुद्ध जो भी मंतव्य होंगे जैसे कि मिथ्यात्वका आशय, शरीरको, वैभवोंको अपना मानना, इन्हें सर्वस्व समझना ये सब कुमत कहलाते हैं और इस हीमें रलाने खलाने वाले जो दर्शन सिद्धान्त गढ़े जाते हैं, जिनसे यह जीव अपने आत्मा सहज स्वरूपमें मग्न नहीं हो पाता, वे सब कुमत इस जीवकी बरबादीके लिए हैं। सो जैनशासनका प्रकाश उन सब खोटे मंतव्यों को बरबादीके हेतुभूत मिथ्या भावोंको ऐसे दहन कर देता है जैसे बड़े भारी ईंधनको अग्निकी कड़िका दहन कर देती है। यहाँ इस दहन कार्यको बतानेके लिए दह शब्द दिया है, मायने निर्दय होकर। तो निर्दयका यह अर्थ नहीं कि जैन शासन दयाहीन है किन्तु खोटे मंतव्योंका दहन इस प्रकार होता है जैसे कि कहते हैं कि रंचमात्र भी गुञ्जाइश नहीं रखी। जैनशासनमें आचार और विचार संशुद्ध रहते हैं। उत्थानके लिए दो ही मार्ग शुद्ध होने चाहिएं—आचारका मार्ग और विचारका मार्ग। विचार के मार्ग तो स्याद्वादकी प्रक्रियासे भी सिद्ध हो गए। किसी भी तत्त्वका समस्त अपेक्षाओंसे निर्णय कराता है स्याद्वाद और प्रेरणा देता है प्रधान शाश्वत तत्त्वकी ओर जानेके लिए। तब आचारवृत्ति संयमरूप आचार और अन्तरङ्गमें आत्माके सहज स्वरूपके ध्यानरूप आचार ये सब इस जीवको शुद्ध आनन्द प्रकट करनेमें सहयोगी हो रहे हैं। ऐसे शुद्ध आचार और विचारसे परिपूर्ण यह जैन शासन सदा जयवंत रहे। सबसे मुख्य बात समझनेकी यह है कि आत्माका तत्त्व क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? मैं वास्तवमें क्या हूँ। सभी दार्शनिकोंने इस मैं की समस्या सुलझाना चाहा। यह मैं क्या हूं, इस मैं के सम्बन्धसे जैसा जो कुछ देखा, जो समझमें आया उसकी हठ करके आग्रह करके लोगोंने अपने अपने दर्शन गढे।

जैन शासनमें स्याद्वादसे अहंका निर्णय—जैन शासनमें इस मैं का निर्णय स्याद्वादसे किया। जब कि कोई पुरुष कहता है कि मैं का वाच्य यह ब्रह्म सदा अपरिणामी है। तो कोई लोग कहते हैं कि मैं का वाच्य यह ज्ञानक्षण क्षणिक है, दूसरे क्षण भी नहीं ठहरता। जैन शासनने बताया है कि चूंकि जितने भी सत् होते हैं वे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब सदा रहते हैं और प्रतिसमय उनकी व्यवस्था बनती और बिगड़ती रहती है। यह सत्का स्वरूप है। अगर कोई सत् है, जिसका सत्त्व है तो उसमें तीन कलायें प्राकृतिक हैं उत्पन्न होना, विलीन होना और बने रहना। तो मैं भी हूं ना ! हूं तो कहते ही हैं सब। तो हूंके मायने अस्तित्व है। तो जब मेरा अस्तित्व है तो मुझमें ये तीन बातें हैं ही। किसी अवस्थामें उत्पन्न होता हूं किसी अवस्थाको विलीन करता हूं और फिर भी सदा बना रहता हूं। तब यह मैं अपरिणामी भी हूं। द्रव्य दृष्टिसे अतिरिक्त यह कुछ अन्य न बन जायगा। और क्षणिक भी हूं पर्यायदृष्टिसे। इसकी जो अवस्था होती है वह उस क्षणकी है। उसके बाद फिर दूसरी अवस्था होती है। तो पर्याय-दृष्टिसे क्षणिक है और द्रव्यदृष्टिसे नित्य है। यह स्याद्वादका सिद्धान्त बना है। तब ऐसा समझकर हित चाहने वाला विवेकी पुरुष करता क्या है कि जो क्षणिक चीज है, पर्याय परिणमन है उसकी उपासनामें लाभ नहीं। उसकी तो जानकारी भर हो गई कि यों पर्याय चलती हैं। विनाशीक है उसका ध्यान करनेमें, उसकी उपासना करनेमें यह उपयोग स्थिर न रह सकेगा, क्योंकि विषय ही मिट रहा है। वह उपयोग आधार भी कुछ न रहा। और जो क्षणिक है उसकी उपासनामें लाभ नहीं बताया गया। जो अपरिणामी तत्त्व है, द्रव्यदृष्टिसे जो शाश्वत रहने वाला है। जिसका परिवर्तन न होगा ऐसा जो अन्तरङ्गमें सहज चैतन्यस्वरूप है उसकी उपासना करने लगते हैं। तो अनित्यको, अनेकको, भेदको गौण करके यह विवेकी उपासक बनता है। और इस उपासनाके प्रसादसे संसार संकटोंसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है, तो अब तत्त्व तो है द्रव्य पर्यायात्मक भेदाभेदात्मक, एकानेक स्वरूप। उसमेंसे भेदका आग्रह करके जो सिद्धान्त बनेगा अथवा अभेदका आग्रह करके जो सिद्धान्त बनेगा उसके उपयोगसे अन्यका न बन सकेगा। तो स्याद्वादकी इतनी कृपा है कि एक बार इस विवेकीको प्रकाशमें लादेता है और प्रकाशमें लाकर खुद भी शांत रहते हैंऔर विकल्प भी शान्त होजाते हैं। जिस जैनशासनके प्रतापसे ये जीव ज्ञान प्रकाश पाते हैं, पदार्थका सत्यज्ञान प्राप्त करते हैं वह जैन शासन सदा जयवन्त रहो। जिसके प्रतापसे संसारी जीवइस संसारके संकटोंसे छूटकर शाश्वत सहज आनन्दका लाभ प्राप्त करते हैं।

इति वन्दितपञ्चगुरुः कृतमङ्गलसत्क्रियः स एव पुनः।
नाम्ना पञ्चाध्यायीं प्रतिजानीते चिकीर्षितं शास्त्रम् ॥ ४ ॥

पञ्चगुरुवन्दनपूर्वक पञ्चाध्यायी ग्रन्थराजके बनानेकी प्रतिज्ञा— अब इस छंदमें ग्रन्थकार अपनी प्रतिज्ञा बतायेंगे कि हमको अब क्या रचना करना है ? पंचपरमेष्ठियोंकी वंदना करके और मंगलरूप श्रेष्ठ क्रियाको करते हुए यह ग्रन्थकार एक पञ्चाध्यायी नामके ग्रन्थको बनानेकी प्रतिज्ञा करता हूं। इसमें सर्व-प्रथम पंच गुरुवोंकी वन्दना की है। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पंचगुरु कहलाते हैं। गुरु नाम उनका है जिनके ध्यानसे, जिनकी संगतिसे, जिनकी आज्ञापर चलनेसे हित होता है। अशरीर परमात्मा यदि न होते तो यह सब आगम कहाँसे आता ? और जीव कैसे वस्तुका यथार्थस्वरूप जानते। यों सशरीर परमात्मा, जिनका दूसरा नाम अरहंत है, उनके द्वारा हमारा कितना उपकार हुआ है? वे हमारे गुरु हैं सिद्ध भगवान। जिनके ध्यानके प्रतापसे ही हमारा हित हो जाता है। यद्यपि वे अशरीर परमात्मा है। शरीर भी न रहा, कर्म और अन्य बातें तो रहेंगी कहाँ ? ऐसे अशरीर भगवान ज्ञानमात्र केवल ज्ञानभाव चैतन्यस्वरूप विशुद्ध उपयोग, उन अशरीर परमात्मतत्त्वके ध्यानके प्रतापसे इस जीवका भला होता ही है। इस जीवका परमार्थसे भला होता ही है। एक निज विशुद्ध चैतन्यस्वभाव की उपासनासे। और उस उपासनामें प्रबल सहयोग देता है सिद्ध प्रभु का ध्यान क्योंकि यहाँ यह निज तत्त्व भी ज्ञानमय है और वहाँ शुद्ध स्वरूप भी केवल ज्ञानस्वरूप है। अन्य आकार आदिक शरीरादिक नहीं हैं। अतएव अशरीर परमात्म-तत्त्वके ध्यानके प्रतापसे निज अन्तस्तत्त्वका ध्यान बनता है। अतएव वे मेरे लिए गुरु ही हितकारी हैं। आचार्य परमेष्ठी तो यहाँ प्रकट ही हितकारी सिद्ध होते हैं, उपदेश देते हैं, आज्ञा देते हैं, मार्ग बताते हैं, गल्तियोंका प्रायश्चित देते हैं, साक्षात् शासन है उनका। अतः आचार्य परमेष्ठी भी गुरु हैं। उपाध्याय परमेष्ठी भी ज्ञान-दान लेकर, ज्ञानलाभ देकर जीवोंका हित करने वाले हैं। वे ज्ञानके भण्डार हैं। उनसे भी जीवोंका हित होता है, अतः वे भी गुरु हैं। साधु परमेष्ठी निर्ग्रन्थ समस्त विकारों से परे रहने वाले केवल आत्मसाधनामें उद्यमी, संसार शरीर भोगोंसे परम विरक्त, जिनकी संगति और दर्शनमात्रसे भाव विशुद्ध हो जाते हैं, और समय-समयपर जिनका उपदेश प्राप्त होता है, जिनसे मार्ग दर्शन मिलता है, वे साधुपरमेष्ठी हमारे गुरु हैं। यों पांच गुरुवोंकी वंदना जिन्होंने की है और जो मंगल श्रेष्ठ क्रिया करने वाले हैं श्रेष्ठ क्रियाके करतवसे ही जीवको लाभ है ऐसा यह ग्रन्थराज नामसे तो पञ्चाध्यायी है, इस शास्त्रके करनेकी इच्छा है उस ही शास्त्रके बनानेकी एक प्रतिज्ञा करते हैं।

अत्रान्तरंगहेतुर्यद्यपि भावः कवेर्विशुद्धितरः।
हेतोस्तथापि हेतुः साध्वी सर्वोपकारिणी बुद्धिः ॥ ५ ॥

ग्रन्थराजनिर्णयका अन्तरङ्ग और विशिष्ट कारण—इस छन्दमें ग्रन्थ बनानेके कारणपर विचार किया है। ग्रंथनिर्माणके कारण जितने हैं उनमें सर्वप्रथम बात तो यह है कि उतना ज्ञान होना चाहिए, जिसके ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम विशेष न हो, वह अन्य कारण भी मिल जायें लेकिन ग्रंथनिर्माणका कार्य नहीं कर सकता। इस कारण ग्रंथनिर्माणके महान कार्यमें मुख्य बात हेतु तो ज्ञानावरणका क्षयोपशम है और अन्तरङ्ग हेतु क्षायोपशमिक भाव है। ज्ञानावरणके क्षयोपशम होने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से जो योग्यता प्राप्त हुई है, वह योग्यता वास्तविक कारण है । पर उसके साथ ही साथ सबके उपकारकी बुद्धि हो तो वह मुख्य हेतु कहा जाता है । किसीके ज्ञान भी होता है और उपकारिणी बुद्धि नहीं है, किंतु ज्ञाता दृष्टा रहता है । एक स्वकल्याण वाली ही बात है । तो वहाँ ग्रंथनिर्माणका कार्य नहीं होता, किंतु वह तो ध्यानमें ही बढ़ता जाता है । तो योग्यता और उपकारकी बुद्धि ये दो साथ हों तो ग्रंथनिर्माणका कार्य बनता है । जैसे कि तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण एक दर्शनविशुद्धि भावना है । उस भावनामें बात यह आती है कि सम्यग्दर्शनके होनेपर जो विश्वके कल्याणकी बुद्धिरूप विशुद्धि होती है वह तीर्थंकर प्रकृतिके बंधका कारण है, केवल सम्यग्दर्शन नहीं । सम्यग्दर्शनके भावमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं होता, इसलिए सम्यक्त्व भूमिका होनी ही चाहिए, पर सम्यक्त्व होनेपर भी जब तक विश्वके उद्धारकी भावना रूप विशुद्धि नहीं जगती तब तक तीर्थंकर प्रकृतिका बंध नहीं है । ऐसे ही ग्रंथनिर्माण के कार्यमें योग्यता तो होनी ही चाहिये । योग्यता बिना, बुद्धि बिना, ज्ञान बिना ग्रन्थ निर्माणका कार्य हो ही नहीं सकता । इस कारण ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेसे जो विशेष ज्ञान होता है वह तो इसकी भूमिका ही है, किन्तु इस भूमिकाके होने पर भी सर्वोपकारिणी बुद्धि हो, अन्य प्रकारका अनुराग हो, तो ग्रन्थ निर्माणका कार्य हो सकता है । ऐसे तत्त्वज्ञानके लिए उपकारिणी बुद्धि वहाँ ही सम्भव है वास्तविक ढंगसे जहाँ कि इस आत्माका स्वरूप भले प्रकार निरखा गया हो और अपने आपमें जैसे प्रयोग किया कि यह आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है । एक अपने आपकी दृष्टि किए बिना यह जगतमें रुल रहा है । कैसा यह आनन्दात्मक है और एक अपने आपमें अपनी दृष्टि पाये बिना कैसी विडम्बनायें सह रहा है । अपने विषय में जिसको ऐसा स्पष्ट बोध हुआ और अपने जैसे स्वरूपको निरख करके यह करुणा जगी ऐसे ही जगतमें सर्व जीवोंका स्वरूप निरख करके आत्मोद्धारकी करुणा जगती है । यह विश्व यह आत्मा कैसा तो विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है, जिसमें सर्व मंगल ही मंगल है, कल्याण स्वयं है, स्वयं शिवस्वरूप है । किन्तु अपने आपके स्वरूपकी ऐसी दृष्टि हुए बिना यह जगतमें रुल रहा है । इसको दृष्टि प्राप्त हो, यह तत्त्वज्ञान मिले जिस ज्ञानके उपयोगमें आनेपर संसारके सर्व संकट छूट जाते हैं । जिन आचार्यों को जिन संतोंको इस प्रकार आत्मस्वरूपका स्पष्ट परिचय है वे ही विश्वके उद्धारकी भावना करते हैं और इस सर्वोपकारिणी बुद्धिके प्रसंगमें ग्रन्थनिर्माणका पुरुषार्थ करते हैं । ग्रन्थनिर्माणमें ज्ञानी संतजनोंका एक स्वयंका भी ध्येय रहता है कि उपयोग हमारा निर्मल रहे, ज्ञानके सम्बन्धमें ही उपयोग बना रहे तो इसमें मेरी भी भलाई है । अथवा जिसको हेय उपादेयका उपयोग जगा, संसार शरीर और भोगोंमें जिनका मन अब नहीं रमता ऐसे ज्ञानी संतोंके राव रहनेके समयमें सर्वोपकारक यत्न ही होंगे । उन्हीं यत्नोंमें यह एक ग्रन्थनिर्माणका यत्न है । तो इसमें बाह्य आश्रयकी अपेक्षासे अनेक कारण हो सकते हैं । फिर भी यहाँ अन्तरङ्ग कारणोंमें दो कारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताये हैं—एक तो भूमिकारूप कारण और दूसरा प्रेरणारूप कारण। भूमिकारूप कारण तो विशुद्ध भाव है और क्षायोपशमिक भाव ज्ञानकी लब्धि ज्ञान विकाश और प्रेरणात्मक कारण है सर्वोपकारिणी बुद्धि। यह समस्त जगत जो कि ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, यह अपने आपके स्वरूपको देख ले तो इसका उद्धार स्वतः हो जायगा। इस बुद्धिसे प्रेरित हो करके हितकारी तत्त्वोंसे परिपूर्ण इस ग्रन्थका निर्माण किया जा रहा है।

सर्वोपि जीवलोकः श्रोतुंकामो वृषं हि सुगमोक्त्या।
विज्ञप्तौ तस्यै कृते तत्रायमुपक्रमः श्रेयान् ॥६॥

सुगमतासे धर्म सुननेके इच्छुकोंके प्रति ग्रन्थनिर्माणका उपक्रम—यह समस्त जनसमूह धर्मको सुनना चाहता है और उसे सुनना चाहता है सुगमरीतिसे। बस जब यह बात समझी गई तो इस जनसमूहके उपकारके लिए ही यह उपक्रम किया जा रहा है और यह उपक्रम उनके लिये श्रेष्ठ सिद्ध होगा। इस जगतमें एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीव असंज्ञी कहलाते हैं। उनमें तो धर्म सुननेकी इच्छा ही नहीं जग सकती। जहाँ मन होता है वहाँ हेय और उपादेयका विवेक जगता है। जिस विवेकसे प्रेरित होकर इस जीवको धर्म सुननेका चाव होता है। सो चतुरिन्द्रिय जीव तक मन न होनेसे उनमें धर्मके प्रसंगकी बात ही नहीं होती। पञ्चेन्द्रियमें कुछ जीव संज्ञी होते और कुछ असंज्ञी होते हैं। उनमें असंज्ञी जीव बहुत कम होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें संज्ञी जीवोंकी संख्या विशेष है। मन होनेके कारण हेय बुद्धिका विवेक कर सकते हैं। इन पञ्चेन्द्रियमें मनुष्योंकी धर्म प्रसंगमें प्रधानता है। मनुष्य उसे कहते हैं जिसके श्रेष्ठ मन हो। मनुष्य उसे कहते हैं जिसके श्रेष्ठ मन हो। मनुष्य संयमी हो सकता। मनुष्यभवसे मुक्ति प्राप्त होती। मनुष्यभवसे युक्ति प्राप्त होती। मनुष्यभवमें जो ज्ञान जो संयम विशेषतया होता है वह अन्य गतियोंमें नहीं पाया जाता। क्षायक सम्यक्त्वको भी, सम्यक्त्व ही उत्पन्न करता है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें मनुष्योंकी विशेषता है। यह मनुष्य, यह जनसमूह किसी प्रकार अपने आपपर करुणा पानेका भाव बनाकर अब धर्म सुननेकी चाहमें आया है। सुनना चाहता है धर्म किन्तु संस्कार चूंकि अनादिसे रागद्वेषादिकके चल रहे थे और उस राग संस्कार से इसको बाह्य चीजें सुगमसी लग रही हैं। उस सुगमकी मौजमें रहनेके कारण यहां भी अभी ऐसी ही भूमिका है कि अगर सरल पद्धतिसे धर्म मिले तो सुनना चाहते हैं। अभी इतनी तीव्र बुद्धि और तीव्र रुचि नहीं जगी कि जिससे यह साहस बना सकें कि चाहे कितनी ही कठिन पद्धतियोंसे धर्म जाननेको मिले उसे मैं सुनूंगा, जानूंगा। अभी यह सुगम रीतिसे ही समझना चाहता है। इस ग्रन्थमें इस समस्त जीवलोकके उपकारके लिए ऐसा ही उपक्रम किया जायगा कि सुगम रीतिसे धर्मको समझ सके।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मकी सुगमताका परिचय—धर्म क्या चीज है ? सो भी आत्मामें ही स्थित है। धर्म किस तरहसे पालन किया जायगा वह विधि भी आत्माकी स्थिति है। अतएव धर्मका पालन, धर्मकी दृष्टि, धर्मका सम्बन्ध कठिन नहीं है। वह अन्य समागमोंसे, अन्य कार्योंसे सुगम है। बल्कि परपदार्थोंमें कुछ परिणमन कर देनेकी बात कठिन क्या, असम्भव है। कोई जीव किसी भी परमें कोई परिणमन नहीं कर सकता। हाँ उनका विकल्प कर सकता है। सो ये विकल्प भी इस जीवके भाव नहीं हैं अतएव कष्टदायक हैं। कठिन हो रहे हैं। और अपने आपके स्वरूपका ज्ञान हो और स्वरूपमें ही रुचि रमण हो, यह काम सुगम है। अब कुछ इस समय जीवोंको परपदार्थोंकी बात तो सुगम लग रही है और अपने आपके धर्मकी बात कठिन लग रही है। थोड़े समयकी बात है, जब ज्ञान विशेष प्रकट हो जाता है तो इस जीवको धर्मकी बात सुगम लग जाती है। उसी धर्मके स्वरूपको इस ग्रन्थमें सरल पद्धतिसे बताया जायगा। धर्म क्या चीज है व धर्मका धारण करने वाला कौन होता है ? सो धर्म और धर्मी दोनोंके सम्बन्धसे इस ग्रन्थमें बहुत विस्तारसे वर्णन किया जायगा। धर्म कहते हैं स्वभावको। जिस वस्तुमें जो स्वभाव पाया जाता है वह उसका धर्म कहलाता है। अब स्वभाव तो वस्तुमें जो है सो ही है और वह एक स्वभाव है। पर उसे इस रूपसे परिचय नहीं किया जा सकता है इस कारण भेद करके उसके अनेक शक्ति अनेक स्वभाव समझाये गए हैं। वह कहलाया धर्म। और, वे सब धर्म जिस पदार्थमें रहते हैं उसे सत्य धर्म कहते हैं। शान्तिके प्रकरणमें जो धर्म पालनकी बात कही जाती है उसका अर्थ इतना है कि आत्माके स्वभावकी दृष्टि करना और उस स्वभावकी दृष्टिमें ही लगे रहना। यही धर्म पालन है। तो इस धर्मपालनके लिए वस्तुके स्वरूपका मिस्रित ज्ञान होना चाहिए अन्यथा इस स्वभावपर दृष्टि कैसे जा सकेगी ? अज्ञान अंधकारमें यह दृष्टि नहीं बनती। शुद्ध ज्ञानप्रकाश हो वहाँ ही इस अन्तस्तत्वकी दृष्टि बन सकती है। तो उस शुद्ध अन्तः प्रकाशके लिये आवश्यक है कि वस्तुका स्वरूप विशेषरूपसे समझा जाय और उस स्वरूपकी श्रद्धासे जो सम्यग्दृष्टि जीव पदार्थ हैं, जो कल्याणमें प्रकृत हो रहे हैं उनकी प्रवृत्ति, उनका चर्याभाव भी भली प्रकारसे समझ लीजिए। यों धर्म और धर्मीका सुगम वर्णन इस ग्रन्थमें किया जा रहा है।

सति धर्मिणि धर्माणां मीमांसा स्यादनन्यथा न्यायात्।
साध्यं वस्त्वविशिष्टं धर्मविशिष्टं ततः परं चापि ॥ ७ ॥

धर्मीके होनेपर धर्मोंकी मीमांसा होनेके कारण धर्मीके स्वरूपका उपक्रम
इस ग्रंथमें धर्मका सुगमरीतिसे वर्णन किया जाना है। धर्मकी मीमांसा तभी सम्भव होती है जब कि कोई धर्मी हो। तो इस कारण सबसे पहले धर्मीकी सिद्धि करनी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिए। जिसमें धर्म बताया जाना है उस पदार्थकी सिद्धि होनेपर ही धर्मीकी सिद्धि की जा सकती है। मूल प्रयोजन तो आत्माका यथार्थ परिज्ञान करना है। अब आत्मा के परिज्ञानके लिये कुछ उस दृष्टिसे भी परखना होगा जिस दृष्टिमें सभी पदार्थोंका वर्णन होता हो। प्रथम यह जाने कि आत्मा है, पदार्थ है तो पदार्थपना समझना समझनेके लिए ऐसे सामान्यरूपको निरखना होगा जिसमें कि पदार्थपनेके नातेसे आत्मा का ज्ञान होनेपर ऐसा ज्ञान जो कि सभी पदार्थोंमें वह स्वरूप पहुंचे। अनेक धर्मोंके समूहका नाम ही तो धर्मी है। धर्म कहो, गुण कहो, दोनोंका अर्थ एक है। वैसे धर्म और गुणमें थोड़ा अन्तर है। गुण तो होता है सद्भावरूप और धर्म होता है सद्भाव रूप और अभावरूप। जिस वस्तुमें मूर्तत्व, चैतन्यत्व आदिक गुण हैं ये सब सद्भावरूप हैं। एक वस्तुमें अन्य समस्त वस्तुओंका अभाव है, ऐसा अभावरूप धर्म भी है लेकिन इस अभावका विधि नहीं है। विधि वस्तुके सद्भाव रूप ही है जो कि स्वयं गुणात्मक है। तो अभावकी पहिचान जीवमुखेन होती है, किंतु भेदकी पहिचान विधिमुखेन होती है। इस कारणसे धर्म और गुणमें अन्तर है लेकिन जहाँ धर्मीका परिचय किया जा रहा है वहाँ धर्म और गुणका अर्थ एक है। पदार्थ अखण्ड और अवक्तव्य है। जब उस पदार्थमें उसकी किसी शक्तिका निरूपण होता है तो उस विवेचनके समय जो विवेचनमें आया ऐसा गुण धर्म कहलाता है, बाकी अनन्त गुणोंका समुदाय धर्मी द्रव्य कहलाता है। देखिये! धर्मी शब्दसे न कहकर पदार्थ सत् शब्दसे कहा जाय तो वह एक अखण्ड पदार्थ ज्ञानमें आता है, किंतु धर्मी शब्दसे कहनेपर कोई न कोई धर्म मुख्य होगा इस दृष्टिके आशयमें, तो वह धर्म तो धर्म हुआ और जिस पिंडमें हम धर्मको सिद्ध कर रहे हैं वह पिण्ड शेष अनन्त गुणोंका समुदायरूप हुआ। यद्यपि समुदाय है वह सभीका जो विवेचनीय गुण है और जो शेष गुण है, सभीका पिण्डधर्मी होता है लेकिन जब विवेचन किया जा रहा है किसी धर्मीका तो वह तो बनेगा आधेय और धर्मी बनेगा आधार। तो जो आधेय है वह आधारमें इस समय रहीं निरखा जा रहा। अतएव शेष धर्मोंका समुदाय धर्मी है और जाननेके लिए निर्णयके लिए समस्त गुणोंका समुदाय धर्मी है। तो जैसे एक विवेचनीय गुण धर्म कहलाता है ऐसे ही शेष समस्त गुण भी धर्म हैं। जब जब भी जिस किसी भी गुणका विवेचन किया जायगा वह दृष्टिमें धर्म है और बाकी धर्मोंका पिण्ड पदार्थ धर्मी है। तो धर्मकी मीमांसा तभी सम्भव है जब कि धर्मीका बोध हो जाय। जैसे अङ्गोंका परिज्ञान तब ही सम्भव है जब एक शरीरका बोध है। हाथका ज्ञान क्या अलगसे इतना ही मात्र कोई कर लेता है? शरीरका परिज्ञान है। उसमेंसे हाथ एक अङ्ग है। जब कि ज्ञान होता है। तो इसी प्रकार धर्मी है एक पिण्ड अवयवी और धर्म है अवयव अङ्ग। तो धर्मीका ज्ञान होनै पर धर्मका ज्ञान होगा। इस न्यायसे सर्वप्रथम विवेचनीय धर्मी होता है। मानें पदार्थ कुछ चीज, वस्तु। उसका स्वरूप क्या है, यह सर्वप्रथम जान लेना चाहिए। वस्तुका स्वरूप ही अब बता रहे हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम् ।
तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पश्च ॥८॥

वस्तुकी सत्स्वरूपता, स्वतःसिद्धता एवं अनाद्यनन्तता—तत्त्व सत् लक्षण वाला है, अर्थात् जिसका लक्षण सत् है उसे वस्तु कहते हैं। वस्तु सत् होता है, यह उसका भाव हुआ। पर इन शब्दोंमें कहा गया यह भाव कि वस्तु सत् लक्षण वाला है, इस कथनमें भेद पद्धति अपनाई है। जिसका लक्षण सत् है वह वस्तु है। लेकिन इतना भी भेद है कहाँ ? और इस भेदके साथ बतानेपर पूर्ण ढंगसे अभी परिचय नहीं हो पाया। तब उनमें कहकर स्वरूप कहते हैं कि वस्तु सन्मात्र है, सत्त्व मात्र है, सत्स्वरूप है, उसका लक्षण सत् है। वह सत् कोई भिन्न चीज है ऐसा नहीं है। वस्तु ही सत् स्वरूप है। जब वस्तुस्वरूप है तो यह बात भी निर्णीत होती है कि वह स्वतः सिद्ध है। वस्तुको किसने बनाया, कैसे बनाया, कहाँ बनाया ? और कुछ नहीं था तो बिना उपादानके कैसे बन गया ? आदिक बातें जब विचारमें लेते हैं तो यह निर्णय होता है कि वस्तु स्वतः सिद्ध है। जो सत् है वह स्वतः सत् है। कल्पना करो किसी वस्तुके बारेमें कि यह न था अब हुआ। तो क्या हुआ ? यह बात सिद्ध नहीं होती। जो सत् है वह स्वतः सिद्ध है जो बात स्वतः सिद्ध होती है वह है पदार्थ। वह अनादि अनन्त है। न उसकी आदि है कि पहिले असत् था अब सत् हुआ। और न उसका अन्त है कि सत् था अब उसकी समाप्ति हो गई। अब कुछ न रहा। ऐसा नहीं होता। अतएव वस्तु अनादि अनन्त है। जब अनादि अनन्त है तो प्रत्येक पदार्थ स्वसहाय है। अपना ही सहाय है। उसके सत्त्वके लिए किसी परका आश्रय नहीं है। वस्तुका रहना, वस्तुका उत्पाद होना अर्थात् नवीन अवस्थामें परिणत होना, पुरानी अवस्थाका विलय होना, ये सब बातें भी स्वसहाय हैं।

निमित्तनैमित्तिकभावमें भी वस्तुकी स्वसहायता एव अखण्डता—देखिये—भले ही अनेक प्रसंगोंमें अन्य पदार्थका निमित्त पाकर परिणमन हो रहे हैं, पर निमित्त पावे, निमित उपस्थित होनेपर वह परिणमने वाला पदार्थ अपनी योग्यता से अपने आश्रय अपने ही सहायमें परिणमा है। उस परिणमन अवस्थाके लिये अन्य का संसर्ग नहीं हुआ। जैसे कोई पुरुष तबला बजा रहा है तो यहाँ हाथ और तबले का कपड़ा या चमड़ा दो बातें ही तो नहीं दिखती है। हाथका तो निमित्त हुआ और तबलेका कपड़ा या चमड़ा शब्दरूपसे परिणत हुआ तो भले ही हाथकी ठोकर उसमें निमित्त हुई, किसी ठोकर बिना उस प्रकारकी आवाज नहीं आयी। पर निमित्त होनेपर भी जब भी वह चाम या वस्त्र शब्द रूपसे परिणत हुआ तो उस शब्द परिणमनके लिये हाथ मिल नहीं गया। सहाय नहीं हुआ कोई अन्य, निमित्त होनेपर भी उपादान अपने सहायमें ही परिणमता है, अन्यका सहाय नहीं लेता। यह जब एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विभाव परिणमनमें देखा जा रहा है तो स्वभाव परिणमनमें तो संदेह ही कुछ नहीं है। यों प्रत्येक पदार्थ अपने सहायपर हैं। अपने ही सहायपर सदा रहता है। अर्थात् नवीन अवस्थामें परिणत होता है। और अपने ही सहायपर अपनी उस अवस्थाका व्यय करता है। इस प्रकार पदार्थका स्वरूप हुआ, कुछ वचनमें आया, लेकिन वस्तुतः वह वचनके अगोचर है। क्योंकि वह स्वयं अपने आपमें अखण्ड है। अखण्ड पदार्थ जो कि ज्ञानमें तो आ जाय, पर वचनमें नहीं आ सकता। ऐसी बहुत सी घटनायें होती हैं जो ज्ञानमें तो आ जायें पर वचनमें नहीं आतीं। तो इसी तरह यह तत्त्व भी जो स्वयं स्वतः सिद्ध है, सन्मात्र है वह ज्ञानमें आया हुआ निर्विकल्प रूपसे प्रतिभासमें आता है। वचनोंसे उसके परमार्थ स्वरूपको हम किस तरह जान सकेंगे, यह स्वरूप इस गाथामें कहा गया है।

इत्थं नो चेदसतः प्रादुर्भूतिर्निरंकुशाः भवति।
परतः प्रादुर्भावो युतसिद्धत्वं सतो विनाशो वा ॥ ६ ॥

तत्त्वकी सत्स्वरूपता न माननेपर असत्की उत्पत्तिका प्रसङ्ग— तत्त्वका स्वरूप कहा गया है कि वह सत्ता लक्षण वाला है अथवा सन्मात्र है और उस लक्षणकी पुष्टिमें और भी विशेषतामें कहा कि वह स्वतः सिद्ध है, अनादि निधन है, अपने ही सहाय है और निर्विकल्प है। अब इस लक्षणकी पुष्टिमें व्यतिरेक मुखसे कह रहे हैं कि यदि ऐसा लक्षण न माना जाय, वस्तुको सत् स्वरूप न माना जाय, स्वतः सिद्ध आदिक न माना जाय तो असत्की उत्पत्ति फिर बिना अंकुशके होने लगेगी अर्थात् उसको कोई रोक न सकेगा और स्वच्छन्द होने लगेगी। जब वस्तु स्वतः सिद्ध माना जाता है तब तो असत्की उत्पत्ति नहीं प्रसक्त होती है क्योंकि वस्तु स्वतः सिद्ध है। और जब स्वतः सिद्ध न माना जाय, वस्तु अपने आप स्वयं सिद्ध नहीं है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु स्वतः होती ही नहीं, उसकी उत्पत्ति परसे होगी। यहाँ उपादानरूप तत्त्वकी बात कह रहे हैं कि कोई भी पदार्थ जब स्वतः नहीं है तो इसका अर्थ है कि उसकी परसे उत्पत्ति होती है। असत्की उत्पत्ति हुई, और यों ही वस्तुकी परसे उत्पत्ति होने लगेगी। क्योंकि अब स्वतः सिद्ध रहा नहीं, अनादिनिधन रहा नहीं, तो इसका अर्थ है कि कोई पर पदार्थ किसीको उत्पन्न कर देता है। यद्यपि निमित्त दृष्टिसे यह व्यवस्था बनी हुई है कि विकाररूप परिणमा करता है वह किसी अन्यका निमित्त पाकर करता है। अथवा विकाररूप परिणमनकी योग्यता रखने वाले उपादानमें ही ऐसी कला है कि वह अनुकूल निमित्त पाकर स्वयं स्वतः अपने ही सहाय पर विकाररूप परिणमने लगेगा। किन्तु इस स्थितिमें उपादानकी स्वतः सत्ता है और वह जो उत्पादव्ययरूप परिणमन रहा है सो अपने सहाय ही परिणमन रहा है। वहाँ किसीकी अपेक्षा नहीं रख रहा है। निमित्त पाकर विभावरूप परिणमता है लेकिन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ भी परिणमनमें निमित्तकी अपेक्षा नहीं, किन्तु योग ऐसा है कि परका निमित्त पाकर उपादान विकाररूप परिणमता है। परिणमन जो क्रिया है, उस परिणतिमें पदार्थ स्वतंत्र है तो वह परिणमन निमित्त और उपादान दोका मिलकर नहीं हुआ है। वह केवल उपादानमें ही परिणमन है। तो वस्तु स्वतः सिद्ध है और स्वसहाय है, ऐसा न माननेपर बन जायगा परतः सिद्ध और असत्की उत्पत्ति।

वस्तुको स्वयं सत्स्वरूप न माननेपर युतसिद्धत्व और सद्विनाशका प्रसङ्ग—तीसरा दोष इसमें यह है कि वस्तु अखण्ड न रहेगा। जब वह स्वके सहाय न रहा, परके सहाय रहा तो जहाँ दो पदार्थ मिलकर कोई एक रूप रखना है। वस्तुतः दो पदार्थ मिलकर एक रूप कभी नहीं रखते, लेकिन लोकव्यवहार अथवा स्थूल दृष्टिसे ऐसा मान लो जैसे कि दो नदियां मिलकर एक जगह बह रही हैं। पहिले वे अलग अलग नदी थी, अब इकट्ठी मिलकर एक जगह बहने लगी तो बहें लेकिन वहाँ अखण्डता नहीं रहती। वहाँपर भी उन नदियोंका जल पृथक-पृथक है। यों ही अगर वस्तु स्वसहाय नहीं है, वस्तुका परिणमन परका सहाय लेकर होता है। तो वहाँ अखण्डता नहीं रह सकती है। वस्तु है निर्विकल्प, उसमें कोई खण्ड नहीं है। एक सत् है और प्रतिसमय उसका एक परिणमन चलता। है तो वस्तु स्वतः सिद्ध अनादि निधन स्वसहाय एवं निर्विकल्प है, इसी कारण वह सन्मात्र है। ऐसा न मानने पर तो फिर एक यह भी दोष आयगा कि सत् पदार्थका विनाश हो जायगा, क्योंकि वह स्वयं अपने सहायमें तो है नहीं, अपने पुष्ट सत्त्वको रख रहा नहीं। तो वह कभी मूलतः नष्ट भी हो जायगा लेकिन ये चार दोष कि असत्की उत्पत्ति, परसे उत्पन्न वस्तुमें खण्डपना होना, पृथक सिद्ध हो जाना और सत्का भी नाश हो जाना ये चार दोष, वस्तुमें हैं नहीं लेकिन वस्तुका स्वरूप सन्मात्र स्वतः सिद्ध स्वसहाय न मानने पर ये चारों दोष आने लगेगें। अब लो उन चारों दोषोंपर क्रमशः विचार करते हैं।

असतः प्रादुर्भावे द्रव्याणामिह भवेदनन्तत्त्वम्।
को वारयितुं शक्तः कुम्भोत्पत्तिं मृदाद्यभावेपि॥ १० ॥

असत्की उत्पत्ति माननेपर द्रव्योंके परिमाणके अभावका व उत्पत्तिकी अव्यवस्थाका—प्रसङ्ग—असत् पदार्थकी उत्पत्ति माननेपर यह दोष आता है कि द्रव्योंमें अनन्तता हो जायगी। याने जो वस्तु पहिले किसी रूपमें भी न थी उसके परमाणुवोंकी सत्ता ही नहीं है। ऐसे असत्की उत्पत्ति माननेसे वस्तुमें मर्यादा नहीं रह सकती कि ये कितनी वस्तुवें हैं। जब अपने सत्ताके बिना ही नवीनरूपसे उत्पत्ति माने जाने लगी तो संसारमें अनन्त द्रव्य होते जायेंगे। कितने नये बनेंगे द्रव्य और कौनसे अटपट बन जायेंगे। इससे कोई मर्यादा न रह पायेगी। फिर तो मिट्टी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक न भी हों तो भी घड़ेकी उत्पत्ति हो जाय। जब असत्‌की उत्पत्ति मानी जाने लगी। कुछ भी नहीं और हो गया। क्या हो गया? उसकी भी कोई मर्यादा न रहेगी कि वहाँ यह ही होगा और कुछ न होगा। और फिर जो चाहे वह हो जाय। कारण कूट मिलानेकी भी जरूरत क्या? मिलावे भी तो उससे उठेगा क्या? कहो कुम्हार मिट्टीसे कुछ बनाना चाहता है और बन बैठे कपड़ा, गधा आदिक कुछ भी न हो, शून्य है। कैसी भी जो चाहे चीज बनने लगेगी। उसका कोई निवारण न कर सकेगा। तो असत्‌की उत्पत्ति माननेमें यह दोष रहा, क्योंकि कार्य कारण भाव तो रहते नहीं। जब उपादानभूत कोई पदार्थ हो तब तो कार्यकारण भावकी व्यवस्था बने। मिट्टी में सम्भव होने वाले कार्य ही हो सकेंगे। यह बात तभी तो बनेगी जब उन सब कार्यों का आधारभूत मिट्टी उपादान माना गया। अब जहाँ उपादान कुछ है ही नहीं, वहाँ कार्य कारणभाव जब कहीं नहीं रहता तो कोई भी वस्तु कहीं भी किसी भी तरह उत्पन्न हो ले, उसमें कोई बाधा नहीं है, कार्य कारणभाव माननेमें यह दोष नहीं आता क्योंकि वहाँ यह व्यवस्था रहेगी कि कार्य अपने कारणसे ही होता है। तो जहाँ असत् की उत्पत्ति स्वीकार करली जाय वहाँ कोई नियम नहीं ठहर सकता। तब वस्तु अट-पट और अनन्त जो चाहे पैदा होते रहेंगे, फिर तो कुछ लोक व्यवहार ही न बन सकेगा। मानव जीवन भी न चल सकेगा। भोजन कैसे बने? नियम तो कुछ है ही नहीं कि आटेसे अथवा अन्यसे भोजन ही बनता है। उससे शेर हाथी वगैरह न बनने लगेंगे अथवा इस ही पदार्थसे भोजन बनता है, ऐसी जब व्यवस्था न रही उपादानके न माननेसे तब फिर कोई करेगा क्या? जगतमें अव्यवस्था बनेगी। कुछ सिद्ध ही नहीं हो सकता। पर ऐसा तो नहीं है। सब कुछ नियमित दिख रहा है तभी तो लोग जैसा पदार्थ चाहते हैं उस उपादानसे उस पदार्थके परिणमनकी आशा रखते हैं। तो असत् की उत्पत्ति माननेसे सारी अव्यवस्था और द्रव्योंकी अनन्तता अविश्वास कहीं भी कुछ भी उत्पन्न होने लगें, यों प्रसंग आयगा और तब न लोक व्यवहार रहेगा न जीवन ही रहेगा। कुछ बात ही न होगी। अतः असत्‌की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। अब परसे सिद्ध माननेमें क्या दोष है? उसे बताते हैं।

परतः सिद्धत्वे स्यादनवस्थालक्षणो महान् दोषः।
सोपि परः परतः स्यादन्यस्मादिति यतश्च सोपि परः ॥११॥

वस्तुको परतः सिद्ध माननेपर अनवस्था दोषका प्रसङ्ग—वस्तुको पर से सिद्ध माननेपर अनवस्था नामका महान दोष आता है। किस तरह कि देखिये! वस्तु जब परसे सिद्ध हो गयी तो जिस परसे निष्पन्न हुई है वह पर भी तो किसी पर-पदार्थसे निष्पन्न होना चाहिए। वह द्वितीय पर भी किसी तृतीय परसे निष्पन्न होना चाहिए। तो परसे निष्पत्तिकी कल्पना करनेपर नवीन नवीन परकी परसे उत्पत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानते रहनेमें ही बुद्धि थक जायगी। और जो अप्रमाणिक तत्त्वकी कल्पना है उसका विश्राम न हो पायगा। यों अनवस्था दोष आता है। वस्तु परसे सिद्ध है यह जो अभी प्रसंगमें मूल बात मान ली है वही गलत है यह अप्रमाणिक बात है तभी तो इसमें यह दोष आया कि उस परकी निष्पत्तिके लिये अन्य पर भी देखना होगा। इस तरह अनन्त परकी कल्पना करते जावो लो अभी उसकी व्यवस्था ही नहीं बन पायी। निष्पत्तिकी कल्पना करनेमें परको ढूंढना पड़ेगा और ऐसी कल्पनाका कहीं विश्राम भी न होगा। जहाँ विश्राम करेंगे, जिस संख्याके पदपर रखेंगे वहाँ ही यह प्रश्न खड़ा होगा इसकी किस परसे उत्पत्ति हुई है ? तो कहीं अप्रामाणिक परसे निष्पत्ति की कल्पनाका विश्राम न हो पायगा। यों अनवस्था दोष आता है। इस कारण वस्तु को परतः सिद्ध न मानकर स्वतः सिद्ध मानना ही श्रेयस्कर है अन्यथा स्वरूप नहीं बन सकता। कुछ विवेक पूर्वक विचार करें तो यहीं दिखने वाले पदार्थोंमें यह व्यवस्था जानी जा सकती है कि उसका वजूद सत्त्व स्वतः सिद्ध है या परत: सिद्ध है ? भले ही किसी निमित्तसे कहीं कोई परिणमन बन गया इतनेपर भी जो परिणमा है वह तो स्वतः सिद्ध ही है। उसकी सत्ता परसे हुई है। वह स्वयं सत् सत् है, इसके विरुद्ध कोई कल्पना ही नहीं जग सकती। सत् कैसे उत्पन्न हो जायगा ? जब असत् की उत्पत्ति ही नहीं सम्भव है तो उसे परसे उत्पन्न हुए मानना यह गात बन ही नहीं सकती। कोई पर किसीको यहीं क्यों बना दे और वह पर भी आया कहाँसे ? परसे उत्पन्न माननेमें अनवस्था और व्यवस्थाका भङ्ग होता है। अतः वस्तु परतः सिद्ध नहीं है, किन्तु स्वतः सिद्ध ही है। अब वस्तुका जो लक्षण कहा गया था उसको न मानने में चार दोषोंका प्रसंग बताया था। उसमें तृतीय दोषके सम्बन्धमें कहते हैं कि यदि पदार्थको युत सिद्ध मान लेते हैं, पृथक सिद्ध मान लेते हैं तो क्या दोष आता है ?

युतसिद्धत्वेप्येवं गुणगुणिनोः स्यात्पृथक्प्रदेशत्वम्।
उभयोरात्मसमत्वाल्लक्षणभेदः कथं तयोर्भवति ॥ १२ ॥

गुणगुणीको युतसिद्ध माननेपर दोनोंकी स्वतन्त्रतामें समता होनेसे गुणगुणीके लक्षणभेदकी अनुपपत्ति—युतसिद्ध मानेनेपर यह स्थिति बनानी पडेगी कि गुणके प्रदेश भिन्न हैं और गुणीके प्रदेश भिन्न हैं। वस्तु एक अखण्ड है, उसमें गुणकी कल्पना की गई है और यह कल्पना अटपट नहीं है किन्तु अर्थसम्मत है। जिस प्रकारकी कल्पनासे हम वस्तुके सही मर्मपर पहुँचनेका यत्न करते हैं वह कल्पना सभी आचार्योंकी एक समान है। और इस ही प्रकारकी धारा दिव्यध्वनिकी परम्परासे चली आई है। अतः यह मनचाही कल्पना नहीं है, नियत अर्थ सम्मत है। लेकिन वस्तुको स्वतः सिद्ध अनादिनिधन स्वसहाय निर्विकल्प न माननेपर ऐसी कल्पना जगेगी कि यह गुण है यह गुणी है, पृथक सिद्ध है, इसका मेल किया जाता है तब वस्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनती है। तो इस कल्पनाका निष्कर्ष यह होगा कि गुणके प्रदेश अलग हो गए और गुणीके प्रदेश अलग कहलाये। जब गुण गुणी दोनों पृथक हो गए, प्रदेश भी पृथक, आधार भी पृथक तो दोनोंकी समता हो गई। जैसे गुण सत् है ऐसे ही गुणी सत् है। जब दोनों एक समान हो गए फिर उनमें यह भेद करना कि यह अमुक गुण है, अमुक गुणी है, ऐसा गुण और गुणीका भिन्न-भिन्न लक्षण न बन सकेगा यह गुण गुणी रूपसे लक्षित न हो सकेगा। बात तो यह है कि अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड स्वरूप वस्तु होता है। वस्तु है, उसको समझानेके लिए पर्याय दृष्टि करके शक्ति भेद किया गया है। तो वस्तु तो परमार्थतः अभिन्न अखण्ड है। अब विवक्षावश उसमें गुण गुणीका लक्षण भेद किया गया है। तो यह बात वस्तुको अखण्ड माननेपर बन सकती है लेकिन जब वस्तुको खण्डित कर दिया, गुण अलग है। गुणी अलग है। गु सत् है, गुणी सत् है। गुणके प्रदेश अब अलग हो गए जब कि गुणको पूर्ण सत् मान लिया गया। जो भी सत् होता है वह प्रदेशवान होता है। तो गुण गुणी पृथक सिद्ध सत् हो गए तो ये दोनों प्रदेशवान भी हुए। अब प्रदेश हो जानेसे दोनों ही स्वतन्त्र बन गए। जब स्वतन्त्र बन गए तो उनमें यह कहना कि ज्ञान गुण है आत्मा गुणी है, यह व्यवस्था न बन सकेगी। क्यों न उल्टी बात बन जाय कि आत्मा गुण है और ज्ञान गुणी है। जब ज्ञानके भी प्रदेश निराले और आत्माके के प्रदेश निराले, तो दोनों समान हो गए। जैसे जीव पुद्गल, धर्म अधर्म या अनन्त जीवोंमें परस्परके सभी जीव सभी अणु ये सब भिन्न सिद्ध हैं, अपने अपने प्रदेशमें रहते हैं तो वे सब समान हैं। उनमें यह व्यवस्था तो नही बन सकती कि यह जीव जीव गुण है और यह जीव गुणी है। यह परमाणु गुण है और यह परमाणु गुणी है। जब वे प्रदेश हैं सत् हैं तो उनमें गुण गुणीका लक्षण नहीं बन सकता। तो युत सिद्ध माननेपर वे स्वतंत्र बन जायेंगे गुण और गुणी। और उनमें गुण गुणीकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भेदैकान्तमें दोषप्रवाह भेदके एकान्तका ही परिणाम है यह कि जो मीमांसक सिद्धान्तमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये ७ पदार्थ माने जाने लगे। ये ७ कहाँ हैं ? पदार्थ तो एक है। किसी भी एक पदार्थको उदाहरणमें लेकर सोचो ! पदार्थ तो अनन्त होता है, पर वह द्रव्य, गुण, कर्मादिक रूपसे अनन्त नहीं है। किंतु जो द्रव्य हैं वे अब अनन्त हैं, अनन्त जीव हैं, अनन्त परमाणु हैं। यों तो अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त पदार्थ हैं, पर उन अनन्त पदार्थोंको तो एक द्रव्य शब्दसे ही कह दिया। अब इसके अलावा गुण कर्म आदिकके और पदार्थ मानने में कल्पना की जाने लगी, सो ऐसा नहीं है। गुण कर्म सामान्य विशेष ये चार बातें पदार्थकी ही विशेषताओंकी हैं। समवाय कोई चीज होती नहीं। गुण कर्म सामान्य विशेष पदार्थमें स्यवच्छावश विदित होते हैं। वे पदार्थमें ही तादात्म्यरूपसे हैं। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तादात्म्यका ही नाम समवाय है समवाय नामक कोई अलग पदार्थ नहीं है। यों ही प्रत्येक वस्तुमें अन्य समस्त वस्तुओंका नास्तित्व है। वह अभाव कोई स्वतंत्र नहीं, किंतु वस्तु ही स्वयं इस प्रकार है कि उसमें कोई पर पदार्थ नहीं है। तो अभाव भी पृथक पदार्थ नहीं। पदार्थ है कोई एक और उसको भेददृष्टिसे समझनेके लिए गुणकी व्यवस्था बनाई और द्रव्य चूंकि निरन्तर परिणमते रहते हैं। यह हुआ कर्म और वस्तु अनुवृत्ति ज्ञानका आधार है सो हुआ सामान्य और उसमें व्यावृत्ति यह भी नहीं है ऐसा व्यतिरेकका ज्ञान होता है सो यह हुआ विशेष। यों पदार्थ अखण्ड है। विवक्षासे उसमें गुणका कथन किया गया है। वस्तुका खंड न माना जायगा। खंड माननेपर गुण गुणीका भेद नहीं रहता। अतः वस्तुको युतसिद्ध मानना दूषण सहित है।

अथवा सतो विनाशः स्यादितिपक्षोपि बाधितो भवति।
नित्यं यतः कथञ्चिद् द्रव्यं सुज्ञैः प्रतीयतेऽध्यक्षात् ॥१३॥

सत्के विनाशके पक्षकी बाधितता—तत्त्वका स्वरूप ८वें छंदमें बताया गया था कि वह सत् लक्षण वाला है अथवा सन्मात्र है क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है, अनादि निधन है, अपने सहाय है और निर्विकल्प है। ऐसा पदार्थ स्वरूपको न मानने पर चार दोष बताये गए थे—वे चार दोष अनुचित हैं उन दोषोंकी निवृत्तिके लिए तत्त्वका स्वरूप ऐसा ही मानना चाहिए जैसा कि बताया गया है। वे दोष कैसे अनुचित हैं। उनमें तीन दोषोंका तो वर्णन किया गया और उनका निराकरण कर दिया कि ये दोष आते हैं। और इनसे वस्तुकी व्यवस्था बिगड़ती है। अतः तत्त्वस्वरूप जो कहा गया वह ठीक है। अब इस छन्दमें चौथे दोषके विषयमें वर्णन किया जारहा है। यदि सत्का विनाश माना जाय तो प्रथम तो यही बात कि माना कैसे जाय? वह तो बाधित है मत। सभी जनोंको और विद्वज्जनोंको वस्तु कथंचित् नित्य प्रतीत होती ही है। यदि द्रव्य कथंचित् नित्य न हो अर्थात् सत् अविनाशी न हो तो एकत्व प्रत्यभिज्ञान हो ही नहीं सकता। जैसे किसी पुरुषको कभी पहिले देखा था और अब फिर एक वर्ष बाद भी दीखनेमें आ रहा है तो उसे निरखकर ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है कि यह वही पुरुष है जिसे हमने पहिले देखा था। तो यह वही यह बुद्धि इस बातका निर्णय करती है कि तबसे लेकर अब तक वही बराबर है। तो नित्यता सिद्ध हुई ना? वहाँ विज्ञानदृष्टिसे भी देखा जाय तो जो पदार्थ सत् है उसका विनाश कभी नहीं होता। कैसे विनाश हो? उसका अभाव कैसे हो जाय? कहाँ जाय वह वस्तु? कहाँ मिल जाय? बड़े बड़े काठ जला दिये जाते हैं तो क्या पुद्गल नष्ट हो गया, राख बन गया? राख यदि हवामें उड़कर आसमानमें फैल जाती है तो क्या वहाँ पुद्गल नष्ट हो गया? सूक्ष्मरूप बनकर फैल गया? और कभी वह दीखे भी नहीं तो भी मत दीखे! उसका अस्तित्व कहीं नहीं गया, किसी अवस्थामें बना हुआ है। जो सत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है उसका कभी नाश नहीं होता। तो वस्तुको सर्वथा नाश होनेका प्रसङ्ग मान लिया जाय, यह बात नहीं कही जा सकती है। प्रत्येक सत पदार्थ वस्तुतः अविनाशी है। अपने आपके बारेमें भी सोच लें—जबसे हम इस मनुष्य भवमें आये हैं तबसे लेकर अब तक हम वही एक हैं अथवा नहीं। जो अनुभव हुये थे सो भी हमने ही किया था और अब अनुभव जो किया जा रहा है वह भी इसके ही द्वारा किया जा रहा है। मैं वही सत हूं, ऐसा सबको यह प्रत्यय हो रहा है। क्षणिकवाद सिद्धान्तमें यद्यपि इस बातको ढकनेके लिए ऐसा कहा गया है कि हम तो एक समय ही कुछ थे और मिट गए, पर इस धारामें इस देहमें एक आत्माके बाद दूसरा आत्मा उत्पन्न होता रहता है और ऐसे उत्पन्न होते हुए आत्माओंके प्रवाहमें पूर्व पूर्वके आत्माका अनुभव उसका स्मरण दूसरे-दूसरे आत्मा करते आते हैं। लेकिन वह धारा क्या किया कहीं तो एकत्वपर टिकना होगा। परम्परा, धारा, संतान किसी भी शब्दसे कहकर एकत्व ही तो स्वीकार किया गया। अब जो सुगमसे प्रत्यक्ष सिद्ध है उसका तो विरोध किया जाय और परिकल्पित अन्य बात मानी जाय यह तो कोई प्रतीत विवेक नहीं है। सबको प्रतीति सिद्ध है कि मैं आत्मा एक हूं सदा रहने वाला हूं। जैसे एक भवमें ६०-७१ वर्षकी उम्र तक अपने आपके एकत्वकी प्रतीति हो रही है इसी प्रकार इस भवके मरणके बाद अगले भवमें जन्म लेनेपर भी वही मैं एक हूं। जो सत् है उसका कभी भी विनाश नहीं होता। तो सत्का विनाश हो जाय यह बात मानना युक्त नहीं है। यो चतुर्थ दोष भी दोष है। वह गुण रूप न बनेगा। तब सारांश इस समस्त उक्त कथनका क्या हुआ सो कहते हैं।

तस्मादनेकदूषणदूषितपक्षाननिच्छता पुंसा।
अनवद्यमुक्तलक्षणमिह तत्त्वं चानुमन्तव्यम् ॥ १४ ॥

निर्बाधतया तत्त्वलक्षणकी प्रसिद्धि—इस कारण उन एक दूसरेसे दूषित पक्षोंको जो नहीं चाहता है उसे यह स्वीकार करना ही चाहिए जैसे कि ८ वें छंदमें तत्त्वका लक्षण बताया गया है। अर्थात् तत्त्व अथवा वस्तु सत् स्वरूप है, स्वतः सिद्ध है, अनादि निधन, स्वसहाय और निर्विकल्प है। किसी भी पदार्थको सम्मुख लेकर यह बात घटित करें कि वह पदार्थ जो सत् है उसका है पना क्या उससे अलग चीज है ? यही वस्तु है, सत् स्वरूप है। कुछ लोग सत्ताको वस्तुसे पृथक तत्त्व मानते हैं लेकिन उसमें बड़ा दोष आता है। वस्तु है तो वस्तुका है पना वस्तुसे पृथक नहीं है। वह वस्तु स्वतंत्र ही है। तो वस्तु सत् स्वरूप है और उसका ऐसा सत् स्वरूप होना किसी परवस्तुसे सिद्ध नहीं है। वह स्वतः सिद्ध ही है। किसीके है को किसने बनाया? किस दूसरे पदार्थसे उसका है पना आया ? किसी दूसरेसे है पना आ जाय तो वह वस्तु है पनसे रहित हो जायगा क्या ? आता ही नहीं है। अर्थात् दूसरी जगह प्रत्येक वस्तु है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और वह अपने स्वरूपसे है । स्वतः है यही कारण है कि वस्तु अनादिसे अनन्त काल तक प्रत्येक वही वही रहता ही है । ऐसे है पनका आना और वस्तुका रहना यह किसी परके आधीन नहीं है । यह अपने ही सहायपर है । वस्तुका ऐसा मर्म न समझने वाले लोग कितने गहरे अन्धकारमें रहते हैं और इसी कारण वे मोहसे विह्वल रहते हैं । कुछ लोग धर्मके नामपर अपने कल्याणकी बात करते हैं । पर तत्त्वके इस स्वरूप तक निगाह नहीं पहुंचती तो वह दर्शनके नामपर अनेक तरहकी गड़ंत कल्पनायें करने लगते हैं । फल यह होता कि उन्हें शान्तिका मार्ग प्राप्त नहीं हो पाता । तो वस्तुका स्वरूप यही है जो बताया जा रहा । सब प्रयत्न करके इस स्वरूपका परिचय करना चाहिए । वस्तु स्वसहाय है । ना, तो स्वयं स्वरक्षित है, स्वयं अपने सहायपर है, स्वयं अपनेमें अपनी योग्यतासे अपना परिणमन किया करता है । ऐसा यह सत् स्वरूप वस्तु सम्पूर्ण अन्श रहित अखण्ड निर्विकल्प है । उस वस्तुमें भेद नहीं पड़ा हुआ है । वह तो जो है सो है । कैसा स्वय है वह दृष्टिमें आ जायगा, पर कथनमें न आ सकेगा, वचनोंके अगोचर है वस्तु स्वरूप । जैसे एक आत्मा ही वस्तु है । उसे ग्रहण करे तो अनुभवमें आयगा । जान लिया । अब यह प्रति समयमें जो परिणमन करता है वह एक ही तो है । उस परिणमनमें भेद नहीं पड़ा हुआ है । लेकिन भेद किए बिना समझे बिना कल्याणका मार्ग भी तो न चल सकेगा । दूसरे जीव कैसे समझ सकें कि आत्मतत्त्व क्या है ? उनको उस परिणमनमें ही भेद कर करके समझाना होगा । इसी उद्देश्यसे हमारे पूर्व आचार्योंने गुण भेद करके और परिणमन भेद करके भव्य जीवों को सम्बोधा है । देखो ! जिसमें श्रद्धा करनेकी शक्ति है, जानने देखने और आनन्द माननेकी शक्ति है वह आत्मतत्त्व है । आत्माको समझना समझाना अति आवश्यक है, अतएव भेद दृष्टिसे समझा गया है, पर वस्तुतः आत्मा और सभी द्रव्य निर्विकल्प हैं, अखण्ड हैं. तो जो वस्तुका स्वरूप कहा गया है कि सत् स्वरूप है स्वतः सिद्ध है, अनादिनिधन है, स्वसहाय है, और निर्विकल्प है, यह स्वरूप सत्य है ।

किञ्चैवं भूतापि च सत्ता न स्यान्निरंकुशा किन्तु ।
सप्रतिपक्षा भवति हि स्वप्रतिपक्षेण नेतरेणेह ॥ १५ ॥

सत्ताकी स्वतन्त्र द्रव्यताका निषेध व सप्रतिपक्षताका प्रदर्शन जिस सत्का ८ वें छंदमें स्वरूप कहा गया है वह सत्ता भी निरंकुश नहीं है अर्थात् स्वतन्त्र, अलग पदार्थ नहीं है । सत्की सत्ताका भी एकान्त आग्रह नहीं है । वहाँ अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षासे सत्तामें सप्रतिपक्षता है । जैसे सत्ता कोई एक समझमें आये तो सत्ता कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक है । सत्ता सत्त्वरूपसे समझमें आये तो सत्ता कथंचित् सतरूपसे है और सत्ता कथंचित सत्वरूपसे नहीं है । सत्ताको असत्वरूपसे भी परखा जाता है । इसका वर्णन आगे करेंगे । यहाँ तो यह जानना चाहिए कि सत्ता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरंकुश नहीं है। संक्षेपमें ऐसा समझें कि सत्ता सत्तास्वरूपकी दृष्टिसे एक है क्योंकि जितने भी सत् हैं सबमें सत्ताका होना सत्त्वके स्वरूपकी दृष्टिसे एक प्रकारकी बात है, पर परिणमन सबका जुदा-जुदा है। उत्पादव्ययध्रौव्यका विकास भी जुदे-जुदे रूपमें है इस कारण सत्ता अनेक है अर्थात् आवान्तर सत्त्वकी अपेक्षा सत्ता अनेक है। जब कभी समझमें आये कि सत्ता सत्त्व स्वरूपसे है, महासत्ता रूपसे है तो वहीं आवान्तर सत्त्वरूपसे सत्ता न रही। जब सत्ताका आवान्तर सत्त्वके रूपसे सत्त्व देख रहे तो महा सत्ताकी दृष्टिमें वह सत्त्व नहीं है। यों अनेक प्रकारसे सत्ता सप्रतिपक्ष है।

नित्य एक व्यापक स्वतंत्र सत्ता पदार्थके मन्तव्यकी अयुक्तता— कोई सिद्धान्त सत्ताको सर्वथा स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं। जैसे द्रव्य स्वतन्त्र है इसी प्रकार सत्ता भी स्वतन्त्र है और उनके सिद्धान्तमें गुण कर्म सामान्य विशेषको भी स्वतन्त्र पदार्थ माना गया है। प्रकृतमें सत्ताकी बात कही जा रही है। द्रव्यकी भाँति सत्ता भी स्वतन्त्र पदार्थ माना है। उनके मतके अनुसार सत्ता यद्यपि वस्तुमें रहती है फिर भी उस सत्ताको वस्तुसे सर्वथा जुदा माना गया है और वह स्वतन्त्र सत्ता नामक पदार्थ नित्य है व्यापक है और एक है। विचार करनेपर यह एकान्त नहीं ठहरता। सत्ता वस्तुसे यदि भिन्न है तो इसके मायने यह है कि वस्तु स्वयं कुछ न रही, अभाव रूप है क्योंकि वह तो सत्त्वहीन है, उसमें सत्त्वका स्वरूप ही नहीं पड़ा हुआ है। सत्ता अलग चीज है। तो सत्तासे भिन्न द्रव्यादिक फिर क्या वस्तु रहे? जब 'है' ही नहीं स्वयं तब वस्तु ही क्या? साथ ही यह भी विचार करें कि इतना कष्ट क्यों किया गया कि सत्ता स्वतन्त्र पदार्थ है और वस्तुमें अनादिसे नित्य सम्बन्ध रखे हुए है और अनन्त काल तक नित्य सम्बन्ध रखे रहेंगे। भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें एक तो यों हुआ ही नहीं करता कि नित्य सम्बन्ध हो। और, वह नित्य सम्बन्ध कथंचित् तादात्म्यरूप माना गया है। तो तादात्म्य है तो है ही। अब वहाँ भिन्न-भिन्न पदार्थ कहना यह कैसे विवेक कह सकता है। सत्ता वस्तुसे अभिन्न है, वह कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। पदार्थकी शक्ति और व्यक्ति है वह। शक्तिका नाम गुण है व्यक्तिका नाम पर्याय है पर जैसे द्रव्य सत् है ऐसे ही गुण सत् और पर्याय सत् स्वतंत्ररूपसे नहीं है। एक दृष्टिसे यह निरखा जा सकता है कि गुण भी सत् है पर्याय भी सत् है, पर सर्वथा भेद दृष्टि बनाकर यह बात युक्त नहीं बैठती। सत्ताको जिस सिद्धान्तने एक और व्यापक माना है तो जरा व्यापकपनेमें भी विचार करें कि सत्ता कैसे व्यापक है? जैसे बम्बईके मनुष्यमें सत्त्व है और यहाँ दिल्लीके मनुष्यमें भी सत्त्व है और सत्ता है एक तो बीच की जगहमें सर्वत्र मनुष्य क्यों नहीं होते? मनुष्य सत्त्व एक और व्यापक है। तो यदि सत्ता व्यापक है तो बीचमें भी तो कुछ होना चाहिए? या सभी पदार्थ मनुष्य हो जायेंगे? मनुष्यत्व जो धर्म है उसे माना व्यापक तो इसका अर्थ यह है कि मनुष्यत्व धर्म एक और सब जगह है। जहाँ मनुष्यत्व हो वहीं मनुष्यत्व है। अब बीचके जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव हैं वे भी मनुष्य बन बैठें अथवा जहाँ कुछ भी नहीं है वहाँ मनुष्यत्व कैसे है ? तो यों सत्ता एक हो, नित्य हो, व्यापक हो, यह बात नहीं बनती । सत्ताको यों स्वतंत्र माननेमें और भी दोष आता है जिसका यथास्थान वर्णन किया जायगा ।

सत्ताकी सत्त्वरूपता, असत्त्वरूपता, नित्यरूपता, अनित्यरूपता, एक-रूपता, अनेकरूपता आदिका वर्णन निर्णय—सत्ताको सप्रतिपक्ष और सत् पदार्थसे अभिन्न न माननेपर अनेकों दोष आते हैं उन सब दोषोंके परिज्ञानसे यह ही निर्णय करना चाहिए कि सत्ता स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है किन्तु वस्तु है ना ! तो वस्तुस्वरूपसे ही है, स्वत: है । वस्तुमें अस्तित्व गुण है यह भेददृष्टिसे कहते हैं । कहते हैं, कहें, पर वह अस्तित्व क्या है ? वस्तु ही स्वयं सत् है उसका वर्णन कर रहे हैं । वस्तुमें अस्तित्व नामक गुण वस्तुसे अभिन्न है । जितने भी पदार्थ हैं वे सब स्वयं सत्स्वरूप हैं, उनकी सत्ता उन उन पदार्थोंमें अभिन्न है और जब हम प्रत्येक वस्तुका विचार करते हैं तो प्रत्येक पदार्थ परस्पर एक दूसरेसे भिन्न हैं और उन सबने भिन्न-भिन्न सत्ता पाई जाती है । एक ही सत्ता सब पदार्थोंमें व्यापक बनकर सत् कहलवादे उन्हें ऐसा नहीं है । सत्ताके सम्बन्धमें एक यह एकान्त धारणा है कुछ दार्शनिकोंकी कि सत्ता नित्य अपरिणामी है लेकिन सत्ता कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं । और, हो भी पदार्थ तो पदार्थ का स्वरूप ही उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, सत् है तो वहाँ उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन बातें अवश्य हैं । तो वस्तु परिणमनशील है और वस्तुमें अस्तित्व भी है तो अस्तित्व कहीं अलग स्वतन्त्र नहीं है अतएव वस्तु परिणमनशील है, परिणमती रहती है तो इसका अर्थ है कि सभी गुण परिणमनशील हैं, निरन्तर परिणमते रहते हैं । यही बात सत्ताके सम्बन्धमें भी जानें कि सत्ता गुणमें भी परिवर्तन होता है । अभी कोई जीव मनुष्य पर्यायमें है । उसका मनुष्यरूपसे सत्त्व है तो वही जीव देवपर्यायमें पहुंचे तो देवरूपसे सत्त्व है, इस दृष्टिसे सत् भी परिणमनशील बन गया । इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्का परिणमन असत्रूप हो जाय । वस्तुकी अवस्थाके बदलके साथ ही सर्व गुणोंकी बदल रहती है । इस कारण सत्ता कथंचित् अनित्य भी है । सर्वथा नित्य न समझना एक ही वस्तुमें द्रव्य दृष्टिसे देखा जाय तो सत्ता वहाँ एक है, पर उस ही द्रव्यमें जब भिन्न भिन्न पर्यायोंके रूपमें देखा तो वहाँ सत्ता अनेक है । तभी यह कह सकते हैं कि जो पूर्व पर्याय थी सो अब नहीं है । पर्यायकी अपेक्षा सत्ता अनेकरूप है, द्रव्यकी अपेक्षासे वह एकरूप है । यों सत्ताका प्रतिपक्ष असत् भी सिद्ध होता है । वह पदार्थान्तररूप परिणमनकी दृष्टिसे नहीं है । अथवा महा सत्त्वकी दृष्टिमें जो सत्त्व है वह आवान्तर सत्ताकी अपेक्षामें नहीं है, यों सत्ता प्रतिपक्ष सहित है उसे निरंकुश एकान्तमय नहीं माना जा सकता है ।

अत्राहैवं कश्चित् सत्ता या सा निरंकुशा भवतु ।
परपक्षे निरपेक्षा स्वात्मनि पक्षेऽवलम्बिनी यस्मात् ॥ १६ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत्ताको निष्प्रतिपक्ष स्वतन्त्र पदार्थ बतानेकी आरेका—यहाँ कोई दार्शनिक शङ्का कर रहा है कि सत्ता तो स्वतंत्र ही हो सकती है क्योंकि वह अपने स्वरूपमें परपक्षसे निरपेक्ष है। अर्थात् सत्ता निष्प्रतिपक्ष है। उसके सम्बन्धमें अनेकपन समझना यह भूल है। सत्ता स्वयं स्वतंत्र पदार्थ है और वह एक है नित्य है, व्यापक है। इसके विपरीत उसका कोई प्रतिपक्ष नहीं हो सकता। यह शङ्का उस दर्शनकी अपेक्षामें है जहाँ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष आदिक अनेक पदार्थ माने हैं। और गुणोंमें जितने भी गुण हैं वे भी भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। उस दृष्टिमें यह शङ्का की जा रही है कि सत्ता सत्‌रूप है, असत्‌रूप है, नित्य है, अनित्य है, एक है, अनेक है, यों सत्ताका प्रतिपक्ष नहीं बताया जा सकता है ? उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

तन्न यतो हि विपक्षः कश्चित्सत्त्वस्य वा सपक्षोपि।
द्वावपि नयपक्षौ तौ मिथौ विपक्षौ विवक्षितापेक्षात् ॥ १७ ॥

दो नयपक्ष होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी सिद्धि—उक्त शङ्का यों ठीक नहीं है कि सत्ताका कोई सपक्ष है तो विपक्ष भी अवश्य है। ये दोनों ही नयपक्ष हैं और विपक्षके भेदसे ये दोनों बातें सम्भव हैं। पदार्थ द्रव्यपर्यायात्मक होता है। सो जब द्रव्य दृष्टिसे देखा जाता है तो उस समय पर्याय गौण हो जाता है। जब पर्याय दृष्टिसे देखा जाता है तब वहाँ द्रव्य गौण हो जाता है। तो द्रव्य और पर्यायमें जब परस्पर विपक्षता है तो उनके विपक्षमें सत्त्वमें भी सपक्ष और विपक्ष बन जायगा। केवल सत्त्व स्वतन्त्र पदार्थ कहाँ है ? जो पदार्थ है सो है, उसका जो 'है' रूप है, अस्तित्व है उसीको ही सत्त्व कहते हैं। तो सत्त्व प्रत्येक पदार्थमें रहने वाला है और वह पदार्थसे अभिन्न है और पदार्थ चूंकि द्रव्य पर्याय स्वरूप है। तो जब उसमें द्रव्य दृष्टि की जाती है तो द्रव्यके गुणकी तरह द्रव्यकी विशेषताकी तरह सत्त्वमें भी विशेषता प्रतीत होती है। और जब पर्याय दृष्टिकी प्रधानता होती है तो पर्यायकी विशेषताकी तरह सत्तामें भी विशेषतायें प्रतीत होने लगती हैं। यों द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु होनेसे सत्तामें भी सप्रतिपक्षता आ जाती है। इस सप्रतिपक्षताका आगे विस्ताररूपसे वर्णन होगा। यहाँ संक्षेपमें समझ लेना चाहिए कि पदार्थ है। तो पदार्थकी अवस्थाके अनुसार सत्व भी उस उस रूपसे समझियेगा। पदार्थमें पर्याय है, गुण है, तो जैसे गुण, पर्याय पदार्थसे निराला नहीं है, पदार्थकी प्रकृति है उत्पादव्ययध्रौव्यरूप इसी प्रकार सत्त्वका भी यही स्वरूप बनेगा कि वह भी उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है।

अत्राप्याह कुदृष्टिर्यदि नयपक्षौ विवक्षितौ भवतः।
का नः क्षतिर्भवेतामन्यतरेणेह सत्त्वसंसिद्धिः ॥ १८ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दो नयपक्ष माननेपर भी किसी भी नयसे स्वतन्त्र सत्ताकी सिद्धि होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताकी असिद्धिकी आरेका—अब एकान्तका आग्रही शङ्काकार शंका करता है कि अभी बताया गया था कि दो नयपक्ष होते हैं और वे परस्परमें विवक्षितकी अपेक्षासे विपक्ष हो जाते हैं तो यहाँ यही कहना है कि नय पक्ष होता है और विवक्षित होता है तो होओ, इसमें कोई हानि नहीं, किन्तु वहाँ सत्त्वकी सिद्धि एक नयसे ही हो जायगी। जब किसी भी नयसे सत्ताको माना जा रहा है तो बस उस नयसे स्वतंत्र सत्ताकी सिद्धि हो जायगी। फिर वहाँ दूसरे नयका विपक्ष माननेकी क्या जरूरत है? नय हैं दो। ठीक है द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय, द्रव्यार्थिकनयसे सत्ताका जो वर्णन हुआ सो हुआ, बस वही है। स्वतंत्र सत्ता है। जब कभी पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे सत्ताका वर्णन होता हो, वह भी स्वतंत्र है। अब वहाँ यह मानना कि द्रव्यार्थिकनयसे जो सत्की बात समझी गयी है उससे उल्टा है पर्यायार्थिकनयसे समझी हुई बात यों विपक्षकी वहाँ क्या गुंजाइस है? किसी भी नय दृष्टिसे सत्ताकी स्वीकारता की जाय तो उस दृष्टिसे वह स्वतंत्र है। फिर विपक्ष नयकी दृष्टिसे सत्ताका प्रतिपक्ष क्यो कहा गया है? जो वर्णन है वह ठीक है और उस वर्णन में वह बात है स्वतंत्र है। वहां विपक्षताकी बात कहाँसे आयगी? इससे सत्ता सप्रतिपक्ष है यह सिद्धान्त नहीं बनता। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतो द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयात्मकं वस्तु।
अन्यतरस्य विलोपे शेषस्यापीह लोप इति दोषः ॥ १६ ॥

द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु होनेसे सत्ताकी सप्रतिपक्षताके निराकरणकी अयुक्तता—"सत्ता अप्रतिपक्ष नहीं है" शङ्काकारका यह मन्तव्य अनुचित है, क्योंकि वस्तु द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक स्वरूप है। उन दोनोंमेंसे किसी भी नयका लोप कर देनेपर दूसरेका भी लोप हो जाता है। वस्तुके स्वरूपकी बात यों समझिये कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होता है। किसी भी वस्तुकी परीक्षा करें, वहाँ सामान्य विशेष स्वरूप मिलेगा। तो सामान्य स्वरूपको ही यदि कोई माने, विशेष स्वरूपको न माने तो विशेषके बिना सामान्य कुछ न रहेगा और कोई विशेष स्वरूपको ही माने सामान्य स्वरूपको न माने तो सामान्य बिना विशेष स्वरूप कुछ न रहेगा। जैसे मनुष्य और कोई मनुष्य व्यक्ति विशेष। अब यहाँ कोई उस पुरुषमें मनुष्य सामान्य ही माने, व्यक्तिरूप न माने, जैसे कि आकार, रंग, मुद्रा गुण आदिकरूप है उस तरहका व्यक्ति विशेषरूप पुरुष न माने तो फिर वह सामान्य मनुष्य क्या? उसकी मुद्रा सकल क्या? उसका कोई सत्त्व न रहा। इसी प्रकार कोई पुरुष व्यक्तिमात्र माने, मनुष्य सामान्य न माने तो मनुष्यसामान्य हुए बिना व्यक्तिका क्या अर्थ है? तो जैसे यहाँ मनुष्य सामान्य और व्यक्तिविशेष ये दो बातें जमकर तन्मय रहती हैं। एकका अंगीकार न करनेपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूसरेका अभाव हो जाता है, ऐसी ही बात प्रत्येक वस्तुमें जानें कि प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है। सामान्य यदि विशेषकी अपेक्षा न करे तो सामान्य नहीं रह सकता, क्योंकि विशेषके बिना सामान्यका स्वरूप क्या ? सामान्य अपने स्वरूपका जाभ भी नहीं पा सकता। इसी प्रकार यदि सामान्यकी अपेक्षा न रखकर विशेषको स्वतंत्र माना जाय तो विशेष भी नहीं रह सकता। तो यहाँ सामान्यके मायने है द्रव्यार्थिकनयका विषय और विशेषके मायने है पर्यायार्थिकनयका विषय।

वस्तुके द्रव्यपर्यायात्मक होनेसे सत्ताके सप्रतिपक्षत्व सिद्ध होनेका संक्षिप्त विवरण—अब यहाँ शङ्काकार जैसा आशय रख रहा था कि जिस नयसे सत्ता माना उसी नयसे सत्ताको स्वतंत्र मानने लगें। प्रतिपक्ष नयकी क्या आवश्यकता है ? किसी विपक्ष नयमें असत्ताकी स्वीकारताका क्या अर्थ है ? सो यहाँ यह दोष है कि यदि विपक्ष नहीं माना जाता, द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय उभयरूप वस्तु नहीं माना जाता, तब फिर कुछ भी नही ठहरता। तो वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। जिस किसी भी वस्तुक. वर्णन करेंगे उसमें सामान्य धर्म और विशेष धर्म दोनोंसे पहिचान बनेगी। केवल सामान्य धर्म देखकर ही पहिचान नहीं की जा सकती और सामान्य धर्मको स्वीकार किए बिना मात्र विशेष धर्मसे भी पहिचान नहीं बन सकती। तो चूंकि वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयस्वरूप है इस कारण सत्ताको भी दोनों नयोंसे बताना होगा। जैसे वस्तु उभयात्मक है तो वस्तुके सभी गुण उभयात्मक हैं। वस्तुकी सत्ता उभयात्मक है, वस्तु अपने स्वरूपसे है, परस्वरूपसे नहीं है ऐसा तो मानना ही होगा। जैसे पुस्तक अपने स्वरूपसे है पर चौकी आदिकके स्वरूपसे नहीं है, इसमें यदि एक बात माने, दूसरी बात न माने तो न बन सकेगा। कोई ऐसा ही आग्रह करे कि वस्तु उदाहरणमें पुस्तक अपने स्वरूपसे है यह तो हम मान लेंगे, परन्तु पुस्तक चौकी आदिकके रूपसे नहीं है, यह नहीं मानते। तो नहीं मानते, इसका अर्थ यह हुआ कि पुस्तक चौकी आदिककेरूपसे है तो फिर पुस्तक ही क्या रही ? वह तो चौकी आदिक बन गयी। तो इन दोनोंमेंसे एकको मानें यह न बन सकेगा। कोई कहे कि हम हय तो मानते हैं कि पुस्तक चौकी आदिकके रूपसे नहीं है लेकिन यह न मानेंगे कि पुस्तक अपने स्वरूपसे है। तो पुस्तक अपने स्वरूपसे है इसके न माननेका अर्थ क्या है कि पुस्तक है ही नहीं। तब वस्तुकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। तो वस्तुके साथ ही अस्तित्व लगा है उस अस्तित्वमें भी ये दो बातें हो जायेंगी कि वह अस्तित्व अपने स्वरूपसे है और अन्य पदार्थके रूपसे नहीं है। तो जैसे वस्तुमें सत्त्व और असत्त्व दोनों धर्म विदित हुए ऐसे ही सत्तामें भी सत्त्व और असत्त्व दोनों धर्म विदित हो जाते हैं। तो सत्ता सप्रतिपक्ष है, यह बात यों सिद्ध है कि वस्तु सप्रतिपक्ष है, वस्तुका वर्णन सप्रतिपक्ष है। वस्तुके साथ ही सत्ता लगी हुई है। अब सत्ता परस्परमें किस प्रकार सप्रतिपक्ष है इसका वर्णन करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिपक्षमसत्ता स्यात्सत्तायास्तद्यथा तथा चान्यत् ।
नानारूपत्वं किल प्रतिपक्षं चैकरूपतायास्तु ॥ २० ॥

सत्तामें सत्ताके प्रतिपक्षभूत असत्ताकी सिद्धि—सत्ताकी सप्रतिपक्षता समझनेके लिए ३-४ प्रसंग बताये जा रहे हैं जिनमें पहिला प्रसंग यह है कि सत्ताका प्रतिपक्ष असत्ता है याने सत्ता सत्तारूप भी है और असत्तारूप भी है। प्रतिपक्ष कहते हैं विरोधी धर्मको। अपने विरोधी धर्म सहित है। अब सत्ताका विरोधी कौन हुआ ? तो उसके पहिले नञ समास कर देनेसे विरोधीपना आ जाता है। तो सत्ताका प्रतिपक्ष असत्ता है और सत्ता नाना रूप है। यह बात बहुतसे दार्शनिक भी कह रहे हैं और सामान्य सत्त्वकी अपेक्षा यह बात दिख भी रही है कि सभी पदार्थोंमें सत्ता है अतएव सत्ता नानारूप हो गयी। जीव भी सत् है पुद्गल सत् है, धर्म सत् है और जीव पुद्गल में प्रत्येक जीव और अणु सत् है। तो सत् नाना हो गए। सत्की नानारूपता है। उसका प्रतिपक्ष है कि सत् एकरूप है। अब विशेष दृष्टिसे जो पदार्थ है वह अपने ही रूप है, ऐसी पदार्थमें जो सत्ता है वह एक रूप है। अब विशेष दृष्टिमें जो पदार्थ है वह अपने ही रूप है। ऐसी पदार्थमें जो सत्ता है वह एक रूप है। एक-एक पदार्थकी सत्ता देखनेसे सत्ता एक रूप प्रतीत होती है। और, अनेक पदार्थोंमें वह सत्त्व पाया जा रहा है तो सत् नानारूप प्रतीत होता रहता है। समझनेकी बात है। यदि इसे कोई यों भी समझे कि चूंकि सामान्य सत्त्व सबमें है उस दृष्टिसे सत्ता एक रूप है और प्रत्येक पदार्थका सत्त्व भिन्न-भिन्न है। पदार्थ ही अन्य पदार्थोंसे पृथक रहता है इस कारणसे सत्ता नानारूप है। किसी भी दृष्टिमें निरखा जाय, यह मर्म जान लेना चाहिए कि सत्ता यदि सत्ता है तो असत्ता भी है। सत्ता यदि नानारूप है तो एकरूप भी है, इसके समझनेका मार्ग यह है कि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे सत्ताके दो भेद होते हैं। द्रव्यार्थिक दृष्टिमें वह महासत्तारूप है और पर्यायार्थिक दृष्टि में वह विशेष सत्तारूप है, आवान्तर सत्तारूप है। एक तो सत्त्व जो सामान्यरूप है और एक प्रत्येक पदार्थका सत्त्व जिससे भेदविज्ञान होता है जिससे वस्तुव्यवस्था विदित होती है वह है आवान्तर सत्ता। अब यहाँ जब यह विवक्षित है कि महासत्ता अपने स्वरूपकी अपेक्षासे सत्ता है तो वहीं यह भी मानना होगा कि आवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे सत्ता नहीं है। जैसे एक ही पुरुषमें मनुष्य सामान्य और पुरुष विशेष दोनों बातें पाई जारही हैं। पर मनुष्य सामान्यकी अपेक्षासे जो निरखा गया मनुष्यत्व है, वह पुरुष विशेषकी अपेक्षासे नहीं है। क्योंकि पुरुष विशेषकी अपेक्षासे व्यक्ति विशेष ही विदित होगा, मनुष्यत्व सामान्य विदित न होगा। तो यों महासत्ता अपने स्वरूपसे सत्ता है तो वह आवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है। यों ही जब पदार्थ विशेषके सत्वपर दृष्टि देते हैं तो वहाँ आवान्तर सत्ता ही है, महासत्ता नहीं है। तो यह आवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत्तामें सत्ता असत्ताकी भाँति नानारूपता व एकरूपताकी सिद्धि— प्रत्येक पदार्थमें स्वरूप और परस्वरूपकी अपेक्षासे सत्त्व और असत्त्व होता है। इसी वजहसे प्रत्येक पदार्थ कथंचित् सत्‌रूप है और कथंचित् असत्‌रूप है, यह बात कही जाती है। जैसे सप्तभङ्गीमें बताया गया है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है परस्वरूपसे नहीं है, यह बात तभी तो सिद्ध होगी जब कि सत्ताको सप्रतिपक्ष माना जाय। इसी तरह दूसरे प्रसङ्गकी भी बात समझलें कि सम्पूर्ण पदार्थोंकी सम्पूर्ण अवस्थाओंमें महासत्ता है। तब यह नानारूप कहा जाता है और एक-एक पदार्थकी अपेक्षासे देखा जाय तो वह स्वरूपसत्ता हुई, वह एकरूप ही है। तो सत्ता नानारूप भी है और एक रूप भी है। यों सत्ता प्रतिपक्ष सहित है यह बात युक्तिसिद्ध होती है न कि सत्ता कोई एक है और स्वतंत्र है, उसका सब पदार्थोंमें समवाय है तब सब सत् कहलाते हैं। प्रत्येक पदार्थ स्वत:सिद्ध है। जो तत्त्वका लक्षण कहा है वह पूर्णतया सही है कि तत्त्व सन्मात्र है, स्वत: सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है और अखण्ड है।

एक पदार्थस्थितिरिह सर्वपदार्थस्थितेर्विपक्षत्वम्।
ध्रौव्योत्पादविनाशैस्त्रिलक्षणा चास्त्रिलक्षणाभाव: ॥२१॥

सत्ताकी एकपदार्थस्थितिका विपक्ष सर्वपदार्थस्थिति व त्रिलक्षणाका विपक्ष अत्रिलक्षण—सत्ता एक पदार्थमें स्थित है। इसका विपक्ष है कि सत्ता सब पदार्थोंमें स्थित है। इसी प्रकार सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है याने त्रिलक्षणात्मक है। इसका प्रतिपक्ष है कि सत्तामें त्रिलक्षणका अभाव है, अत्रिलक्षणात्मक है। यहाँ दो प्रसङ्गोंपर विचार किया गया है। सत्ता स्वरूपसे सामान्यसे देखा जाय तो अस्तित्वका नाम सत्ता है और एक यह भाव है और यह सत्ताभाव सब पदार्थोंमें स्थित है अर्थात् सभी सत् हैं। तो इस दृष्टिसे सत्ताकी यह विशेषता हुई कि वे सब पदार्थ स्थित हैं। तो इसका प्रतिपक्ष यह है कि सत्ता भी एक पदार्थ स्थित है। आवान्तर सत्त्वकी अपेक्षासे जब निरखा जाता है तो प्रत्येक पदार्थकी सत्ता उसकी उसके अपने आपमें है। यों कोई भी एक सत्व एक पदार्थमें ही रहता है। तो सत्ता इस तरह सप्रतिपक्ष तन्मय है, पर्यायार्थिक दृष्टिसे वस्तुका प्रतिसमय उत्पाद और व्यय होता है, वस्तुसे सत्व अलग नहीं है। जिस वस्तुका उत्पादव्यय हुआ वही सत्ताका उत्पाद व्यय हुआ। याने अब यह सत्त्व किसी नवीन अवस्थारूपसे उत्पन्न है और पहिली अवस्था रूपसे उत्पन्न है और पहिली अवस्थारूपसे उसका व्यय है। इतनेपर भी सत्त्व ध्रौव्य रहता है। वही एक सत्त्व है जो कालानुसार उत्पाद व्ययमें रहा करता है। यों सत्ता त्रिलक्षणात्मक है। तो इसी प्रकार ये तीन अवस्थायें एक समयमें होने वाली त्रिलक्षणात्मक पर्याय हैं। फिर भी ये तीनरूप नहीं हैं, क्योंकि उनमें व्यतिरेक पाया जाता है। जिस स्वरूपसे वस्तुमें उत्पाद है उस स्वरूपसे ध्रौव्य और व्यय नहीं है। जिस स्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूपसे वस्तुमें विनास है उस स्वरूपसे उत्पाद और ध्रौव्य नहीं है, इसी प्रकार जिस स्वरूपसे ध्रौव्य है उस स्वरूपसे उत्पाद और व्यय नहीं है। तब सत्ता त्रिलक्षण न रही एक पर्यायकी अपेक्षासे देखा जाय तो उस ही पर्यायकी विवक्षामें उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीन नहीं विदित होते। जिसकी विवक्षा है उसके ही धर्म विदित होते हैं। यों सत्ता त्रिलक्षण नहीं है किन्तु एक-एक लक्षणरूप है। तो इस चौथे प्रसंगमें भी सत्ताकी सप्रतिपक्षता कही गयी है। तो सत्ता कोई स्वतंत्र पदार्थ है, निरंकुश है अपने आपका स्वतंत्र स्वरूप लिए हुए है। द्रव्य, गुण, पर्याय सबसे निराला है, एक सर्व व्यापक है, ऐसा कोई स्वतंत्र सत्ता नामक पदार्थ नहीं है, किन्तु सत्ता वस्तुका ही गुण है। वस्तु ही स्वयं सत् स्वरूप है। गुण भी क्या कहें, किन्तु भेद दृष्टिसे कहना पड़ता है। वस्तु है ना, तो उस है हीका नाम सत्त्व है। तो यों वस्तु सत् स्वरूप है और वस्तुके निर्णय के अनुसार सत्ताका भी निर्णय होता रहता है। यों सत्ता सप्रतिपक्ष है और उसकी सप्रतिपक्षताके चार प्रसंग बताये गए हैं। अब इसके प्रसंग और सुनो !

एकस्यास्तु विपक्षः सत्तायाः स्याददो ह्यनेकत्वम्।
स्यादप्यनन्तपर्यय प्रतिपक्षस्त्वेकपर्ययत्वं स्यात् ॥ २२ ॥

सत्ताकी एकताका प्रतिपक्ष अनेकता व अनन्तपर्ययताका प्रतिपक्ष एक पर्ययता—सत्ता एक है। यह सामान्य दृष्टिसे कथन है। इस एकका प्रतिपक्ष है अनेक। सत्ता अनेक है। सत्ताका केवल स्वरूप देखा जाय तो उस सामान्य दृष्टिमें सत्ता एक है। सत्त्व है, सत्त्वमें विभिन्नता क्या ? है पनेमें नानारूपता क्या ? उस है का अस्तित्व क्या ? तो यों अस्तित्व सामान्यकी दृष्टिमें सत्ता एक है लेकिन सर्वथा एक नहीं कहा जा सकता। सर्वथा एक माननेमें स्वतंत्र सत्ता माननी होगी। और, वह सिद्ध होती नहीं। है ही नहीं ऐसा। तो प्रतिवस्तुका सत् स्वतंत्र है तो प्रतिवस्तुकी अपेक्षा सत्ता अनेक है तब पदार्थ अनन्त हैं, अनन्त जीव द्रव्य हैं, उनसे भी अनन्त गुणे पुद्गल द्रव्य हैं, एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। जब यों पदार्थ अनन्त हैं तो सत्ता भी अनन्त है यों एक सत्ताका प्रतिपक्ष अनेक सत्ता है। अब छठवें प्रसगकी बात सुनो ! सत्ता अनन्त पर्याय स्वरूप है क्योंकि प्रति पर्याय, प्रति पदार्थके भेदसे सत्ता भिन्न-भिन्न ध्यानमें आती है। तो यों अनन्त पर्यायरूप होकर भी सत्ताका प्रतिपक्ष है एक पर्यायरूप होना। जिस दृष्टिसे सत्ता अनन्त पर्यायरूप है। मानो अनन्त पर्यायोंमें सत्त्व रहता है इस कारण वह एक सत्त्व अनन्त पर्यायरूप है तो प्रतिअवस्थामें सत्त्व जुदा-जुदा है अन्यथा पर्यायें विविध न हो सकेंगी। जो विविध हो वह विविध सत्त्वसे सम्पन्न है। यों एक एक पर्यायमें एक एक सत्त्व है, यों सत्त्व एक पययारूप है जब सामान्य दृष्टिसे एक पर्यायरूप देखा कि सत्ता तो एक रूप है, एक अवस्था है तो विशेष दृष्टिमें सत्ता अनन्त पर्यायरूप देखी गई।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यों अनन्त पर्यायताका प्रतिपक्ष एक पर्यायता है इसी प्रकार सत्ताके सम्बन्धमें सप्रतिपक्षताका वर्णन किया। सप्रतिपक्षताका कथन उस शंकाके उत्तरमें किया गया है जहाँ यह माना कि सत्ता कोई है, वह ठीक है, लेकिन वह स्वतंत्र ही है, निरपेक्ष है। इस शङ्काके समाधानमें सत्ताके स्वरूप और विशेषताकी बात कही गई कि सत्ता स्वतंत्र निरंकुश नहीं हो सकती।

एकस्मिन्नहि वस्तुन्यनादिनिधने च निर्विकल्पे च।
भेदनिदानं किं तद्येनैतज्जृम्भते वचस्त्विति चेत्॥ २३॥

अखण्ड वस्तुमें भेद किये जानेके कारणकी जिज्ञासा—अब इस प्रसंगमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वस्तु तो वास्तवमें अखण्ड एक द्रव्य है। कोई भी पदार्थ हो, वह स्वयं अपने आपमें अभेद और अखण्ड है। एक जीव है। उस जीवमें खण्डपना कहाँ है। एक ही है अभेदरूपसे, तब जो अनुभव होता है वह एक अनुभव होता है, निरन्तर अनुभव होता है। एक परिणमन आत्माके किन्हीं प्रदेशोंमें हो, किन्हीं प्रदेशों में न हो, ऐसा अन्तर वहाँ नहीं पाया जाता। तो वस्तु अखण्ड है। पुद्गल द्रव्य एक अखण्ड द्रव्य है। धर्म द्रव्य लोकाकाशमें व्यापक होकर भी एक अखण्ड है। अगुरुलघुत्व गुणके कारण जो परिणमन होता है वह उस असंख्यात प्रदेशी एक धर्म द्रव्यमें पूरेमें होता है। यों ही अधर्म और आकाश भी एक-एक अखण्ड द्रव्य है। कालाणु लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक अवस्थित है और वह एक प्रदेशी है। अपनेमें अखण्ड है। यों वस्तु प्रत्येक अखण्ड ही होता है और वह अनादि है। कोई भी वस्तु किसी दिनसे निष्पन्न हो यह हो नहीं सकता। यदि किसी दिनसे निष्पन्न होता है तो उससे पहिले वह असत् कहलाया, सो सर्वथा असत्का कभी उत्पाद नहीं होता। इसी प्रकार वस्तु अनन्त है। इसका कहीं भी अन्त नहीं है। यदि वस्तुका अन्त मान लिया जाय कि किसी दिन यह वस्तु समाप्त हो जाती है, तो उसका अर्थ यह हुवा कि सत्त्व नहीं रहता। तो जो उसमें सत्त्व है, प्रदेश है, शक्ति है, गुण है वह कैसे सर्वथा असत् हो जायगा। वह तो रहेगा ही। चाहे किसी भी रूपमें रहे। तो वस्तु अनन्त है और निर्विकल्प भी है। तो जब वस्तु यों अभेद रूप है तो उसमें भेद डालनेका कारण क्या है? जिससे कि यह कथन शोभा वे। सत्ता सप्रतिपक्ष है, एक है अनेक है। एक एक पदार्थमें है, सर्व पदार्थमें है, आदिक बातें युक्त बैठें ऐसे भेदका कारण है क्या? वस्तुका जहाँ यथार्थरूपसे स्वरूप कहनेकी बात आती है तो वहां यह बताया ही जाता है कि वह वस्तु अवक्तव्य है, अखण्ड है, और है भी ऐसा। जो भी सत् है वह अपनेमें परिपूर्ण है और अखण्ड एक है। तो ऐसे अखण्ड सत्में अनेक प्रतिपक्ष बताना यह सामान्यका प्रतिपक्ष विशेष है। सत्ता इस दृष्टिसे सामान्यरूप है, एक दृष्टिसे विशेष रूप है तो यह भेद कहाँसे आ गया? सत्ता एक दृष्टिसे एक है, एक दृष्टिसे अनेक है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब जो पदार्थ परमार्थत: अखण्ड है। अभेद है तो उसमें फिर भेदकी क्या बात? कौन सा गुण है, हेतु है, कारण है कि जिससे उसका भेद किया जाय। वस्तुको बताया है कि वह त्रिलक्षणात्मक है। यह भी एक भेद डालनेकी बात है। प्रथम तो यह भी न कहना चाहिए था। अखण्ड द्रव्यमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य होना, विरुद्ध धर्म बताना, यह कैसे सम्भव होगा? खैर बताया गया कि वस्तु त्रिलक्षणात्मक है। तो अब उसका भी प्रतिपक्ष बताया कि एक एक लक्षणरूप है। वस्तु अत्रिलक्षण है। तो इत्यादिक विधियोंमें अखण्ड वस्तुके खण्ड करना प्रथम तो यह बात युक्त नहीं जचती जो एक निर्णय हो गया और जिस निश्चयपर एक बार बुद्धिको पहुंचाये। जिस निश्चयसे परमार्थ और निश्चयकी बात कहा करते हैं फिर उस परमार्थ स्वरूपसे मुड़ करके इन उपचरित बातोंका कहना कहाँ तक युक्त है? अखण्ड वस्तुमें भेद करनेका कारण क्या है सो बताओ।

अंशविभागः स्यादित्यखण्डदेशे महत्यपि द्रव्ये।
विष्कम्भस्य क्रमतो व्योम्नीवांगुलिवितस्ति हस्तादिः॥ २४॥
प्रथमो द्वितीय इत्याद्यसंख्यदेशास्ततोप्यनन्ताश्च।
अंशा निरंशरूपास्तावन्तो द्रव्यपर्ययाख्यास्ते॥ २५॥
पर्यायाणामेतद्धर्मं यत्त्वंशकल्पनं द्रव्ये।
तस्मादिदमनवद्यं सर्वं सुस्थं प्रमाणतश्चापि॥ २६॥

अखण्डप्रदेशी द्रव्यमें अंशविभागकी परिकल्पनाका निदान विष्कम्भक्रम यद्यपि पदार्थ अखण्डप्रदेशी होता है और महान भी होता है तो भी उसमें विस्तारक्रम से अंशविभाग कल्पित किया जाता है। जैसे आकाशमें एक अंगुल, दो अंगुल, ३ विलस्त, एक हाथ, एक गज आदिक अंशविभाग किए जाते हैं, कहीं अंशविभाग करनेसे आकाशके खण्ड नहीं हो जाते! वह तो अखण्ड ही है और साथ ही यह भी देखें कि उस अखण्ड आकाशमें जो अंशविभाग किया है वह भी सत्य है। तो जैसे अखण्ड आकाशमें अंशविभाग किए जाते हैं ऐसे ही द्रव्यमें जो कि अखण्ड है अंशविभाग वहाँ भी किया जाता है। जितने एक द्रव्यमें अंश हैं उतनी ही उस द्रव्यकी पर्यायें समझना चाहिए। जब द्रव्यके प्रदेशमें अंशकी कल्पना होती है और जब जो पर्याय विदित होती है उस पर्यायको द्रव्य पर्याय कहते हैं। द्रव्यमें अंशोंकी कल्पना करना ही पर्यायोंका स्वरूप है। यह अंशकल्पना तिर्यकरूपसे भी होता है, शक्तिरूपसे भी होता है और ऊर्ध्वांश रूपसे भी होता है। जैसे द्रव्योंमें प्रदेश अंश कल्पना करके तो द्रव्य पर्याय बनती है। पदार्थमें शक्त्यंशकी कल्पना करके गुण समझा जाता है और कालकृत अंश करके याने एक समयका परिणमन, यों समय-समयके परिणमन, यों अंश करके गुण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर्याय समझी जाती है। द्रव्य उन समस्त अंशोंका समूह है। जैसे वर्तमानमें अनन्त शक्तियोंका समूह द्रव्य है। यदि उनमेंसे कोई शक्ति न मानी जाय तो द्रव्य पूर्ण नहीं हुआ, द्रव्य अखण्ड न बना और इसी कारण उसका सत्त्व भी नहीं बना। यों ही कालकृत पर्यायोंमें यदि किन्हीं पर्यायोंको छोड़ दिया जाय तो वह द्रव्य नहीं बना, क्योंकि द्रव्य होते हैं अनादि अनन्त। यों सब प्रकारके अंशोंके समूहको एक अखण्ड द्रव्य कहते हैं। द्रव्यकी जितनी भी अनादि अनन्त पर्यायें हैं उन पर्यायोंका समूह द्रव्य है। यद्यपि द्रव्य प्रतिसमय परिपूर्ण हैं फिर भी द्रव्यके बारेमें जानकारी न समझिये। यदि नहीं यों जानते कि अनन्त पर्यायोंका समूह द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्यकी एक समयमें एक पर्याय होती है, और काल (समय) है अनन्त। काल समय भूतमें भी अनन्त याने अनादि है और भविष्यमें भी अनन्त है और सर्व समयोंमें द्रव्य रहता है। उसकी पर्यायें रहती हैं। तो वस्तु भी अनादि अनन्त हैं तब जो वस्तुका स्वरूप कहा गया कि पदार्थ सन्मात्र है, स्वतः सिद्ध है, स्वसहाय है, अनादि अनन्त है और अखण्ड है यह बात पूर्ण प्रमाण सिद्ध है फिर भी उसका परिज्ञान अंश किए बिना हो नहीं सकता इस लिए देशांस गुणांश तथा गुण, और यों भेद करके उस अखण्ड द्रव्यको समझाया गया है। वस्तु कोई भी हो, वह अनन्त गुणमय है और अपने आपमें अखण्ड सत् है। ऐसे अखण्ड पदार्थमें अंशोंकी कल्पनाकी जाती है। तो अंशकल्पना दो पद्धतियोंमें होती है एक तिर्यकरूप, दूसरी ऊर्द्धांशरूप। एक समयके सत्को अनेक अंशोंमें विभाजित करना सो तिर्यक अंश कल्पना कहलाती है। कालभेदको दृष्टिमें न लेकर उस पदार्थके अंश करना सो तिर्यक अंश कल्पना कहलाती है। इन प्रत्येक अविभागी अंशोंको द्रव्य पर्याय कहते हैं। तिर्यक अंशकी कल्पना करनेसे दो दृष्टियाँ बनती हैं एक तो प्रदेशकृत अंश, दूसरा शक्ति सम्बन्धी अश। जहाँ प्रदेश सम्बन्धी अंशकी बात है उसे तो कहते हैं द्रव्य पर्याय और जहाँ शक्ति सम्बन्धित बात है उसे कहते हैं गुण।

पदार्थमें ऊर्द्धवांशविभागका निदान कालकृत क्रम—अब कालकृत भेद दृष्टिसे निरखा जाय तो द्रव्यका एक समयमें एक आकार है। दूसरे समयमें दूसरा आकार है। यों प्रतिसमय भिन्नाकार है। तो अनन्त समयका अनन्त आकार है। आकारके मायने आकार भी है और परिणमन भी है। तो यों क्रमसे द्रव्यके अनन्त आकार अथवा परिणमन होते हैं। यों काल भेदमें अंश कल्पना करना ऊर्द्धवांश कल्पना है। पदार्थ परमार्थतः जैसा अखण्ड है उसे वैसा समझनेके लिए जो विवेकीजन पद्धति अपनाते हैं वह परम्परा समान होती है और इस पद्धतिमें कहीं सूक्ष्म नामान्तर विवक्षाभेदसे हो तो भी उनका आशय ग्रहण करना चाहिए। द्रव्यसम्बन्धी आकारको व्यञ्जनपर्याय कहा है और। कहीं उस व्यक्त परिणमनको भी व्यञ्जनपर्याय कहा है। तो जहाँ प्रदेशके आकारको व्यञ्जनपर्याय कहा वहाँ उसका प्रतिपक्षी है गुण-पर्याय। और जहाँ व्यक्त परिणमनको व्यञ्जनपर्याय कहा है वहाँ उसका प्रतिपक्षी है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थपर्याय। अर्थपर्याय तो पदार्थके प्रत्येक परिणमनको कह सकते हैं, पर शब्द तो
सीमित हुआ करते हैं। भाव उससे कई गुणित होता है। रूढ़िसे अथवा समभिरुढ़नय
से शब्दोंका अर्थ कोई विवक्षित होता है। तो द्रव्य पर्यायरूप अंशकल्पना प्रदेशवत्व
गुणके निमित्तसे होता है। सो प्रदेश निमित्तक अंश कल्पना द्रव्य पर्याय है और शक्ति-
स्वभाव निमित्तक अंश कल्पना गुणपर्याय है। अब कालक्रमसे एक गुणकी अनन्त
समयोंमें अनन्त अवस्थायें होती हैं, इसीका नाम है गुणमें ऊर्द्धवांशकी कल्पना। अब
अर्थ पर्यायके सम्बन्धमें दो आशय हैं अथवा दो प्रकारके भेद विदित होते हैं एक तो
एक समयकी जो पर्याय है वह अर्थपर्याय कहलाती है। एक समयकी पर्याय स्थूल नहीं
होती, उपयोगमें ग्रहण नहीं होती, वह सूक्ष्म अर्थपर्याय है। दूसरे आश्रयमें अगुरु-
लघुत्व गुणके कारण अन्य निमित्तके बिना वस्तुके सहज स्वभावसे जो षड्गुण हानि
वृद्धि परिणमन है वह अर्थपर्याय कहलाता है। तो एक गुणकी एक समयमें जो अवस्था
है अनेक अवस्थायें होती हैं, उनमें जो अंश कल्पना है वह तो है ऊर्द्धवांश कल्पना।
किन्तु अब जो एक गुणकी अवस्थामें जो अविभाग प्रतिच्छेदरूप अंश कल्पना है वह
गुणमें तिर्यक अंश कल्पना है। जैसे एक ज्ञान गुणका एक समयका परिणमन है, दूसरे
समयका दूसरा परिणमन है तो यह हुई ऊर्द्धंश कल्पना। अब उनमेंसे एक ही समयका
परिणमन लिया और उस परिणमनमें यह कह सकना कि इसमें इतना अविभाग प्रति-
च्छेद है यह है गुणपर्यायमें तिर्यक अंश कल्पना। जैसे दूधमें चिकनाईका तारतम्य है।
बकरीके दूधसे गायका दूध चिकना है, गायके दूधसे भैंसका दूध चिकना है। अब वहाँ
कोई दूध है, उस दूधमें यह बुद्धि बनती कि इसमें ८० प्रतिशत चिकनाई है, तो जो है
वह तोएक समयकी परिणति है। अब उसमें भी डिग्रियोंका अविभाग प्रतिच्छेदका जो
परिकल्पन हुआ है वह है गुणपर्यायकी तिर्यक अंश कल्पना। गुण एक ही समय उस
द्रव्यके सर्व प्रदेशोंमें रहता है। इस कारण गुणोंकी कल्पना एक प्रदेशक्रमसे नहीं
बनती है किन्तु भावज्ञानमें उस भावके और अंश कर करके कल्पना बनती है। तो यहाँ
यह ही सब कथन चार प्रकारोंमें विभाजित होता है।

देश, देशांश, गुण, गुणांशकी परिकल्पनाकी संगतता—देश, देशांश, गुण,
गुणांश। देश तो देश ही है, अखण्ड एक पदार्थ है उसमें विशेषता बतानेके लिए ३
भेद किए हैं– देशांश, गुण और गुणांश। देशांश तो प्रदेशक्रमसे होगा जिसमें आकर
जैसी पर्याय बनती है और गुण स्वभावके कल्पित अंशोंमें मिलेगा। जैसे एक पदार्थ
वह एक स्वभावरूप है। अब उसमें भेद होना, इसमें यह शक्ति है, यों अनन्त शक्तियों
का मानना यह कहलायेगा गुण और उस गुणका प्रतिसमयकी परिणतिका भेद करना
वह हुआ गुणांश। एक गुणमें अनन्त गुणांश होते हैं, जैसे एक ज्ञान गुणका दृष्टान्त
लें तो ज्ञान गुणके जघन्य अविभाग प्रतिच्छेद जहाँ विकसित है वह है सूक्ष्मनिगोद
लब्धपर्याप्तक जीव। वहाँ अक्षरके अनन्तवाँ भाग व्यक्त है ज्ञान। यद्यपि वह सबसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जघन्य विकास बताया है लेकिन वहाँ भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है ? जघन्य ज्ञान से बढ़कर निगोदियोंमें बहुतसे ज्ञान पाये जाते हैं जो अपेक्षाकृत एक दूसरेसे बड़े हैं। उनसे अधिक दो इन्द्रियमें, उससे अधिक तीन इन्द्रियमें, उससे अधिक चार इन्द्रियमें उससे अधिक असंज्ञी पंचेन्द्रियमें और उससे अधिक संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें होते हैं। जैसे यहीं मनुष्योंमें देखो तो नाना प्रकारसे कम-बढ ज्ञान विदित होते हैं। तो ज्ञानका एक समयका जो परिणमन है वह कैसा है ? यह समझानेके लिए उसमें भी अविभाग प्रतिच्छेद बनाया जाता है। तो यों देशांशगुण और गुणांशकी कल्पना बिना यह अखण्ड द्रव्य समझा नहीं जा सकता। उसका सत्त्व विदित न होगा इस कारण यह भेदकल्पना सत्ताकी सप्रतिपक्षताके वर्णनका कारण होती है।

सत् पदार्थका चार विभागोंमें अवगम—उक्त कथनका सारांश यह है कि कोई भी पदार्थ सत् है तो वह चार भागोंमें विभक्त विदित होता है। वे चार भाग हैं—देश देशाँश, गुण और गुणांश। देश नाम है उस परिपूर्ण पदार्थका। अनन्त गुणमय पदार्थके अखण्ड अंशोंके नाम प्रदेश हैं। जैसे गुण पर्ययवान कहा, गुण समुदाय कहा, पर्ययसमुदाय कहा। जो एक अखण्ड सत् है उसे देश कहते हैं। उस अखण्ड पिण्डरूप देशमें प्रदेशकी अपेक्षासे जो अंशकल्पना की जाती है वह देशांश कहलाता है, है कोई एक पदार्थ। अब यह पदार्थ है प्रदेशी। प्रदेश हुए बिना सत्त्व नहीं होता। उसकी अपेक्षाका कुछ तो विस्तार होगा क्षेत्र होगा। तो जो प्रदेश है वह ही देशांश कहलाता है और उस अखण्ड पिण्डमें जो स्वभाव है उस स्वभावका विधिपूर्वक भेद करके जान पाते हैं तो वह भेद शक्ति नामसे विदित होती है। तो उस पिण्डमें जो शक्तियाँ हैं उनको गुण अथवा शक्ति कहते हैं और शक्ति कोई भी व्यक्ति पाये बिना रहती नहीं अर्थात् सभी कुछ किसी न किसी परिणमनको लिए हुए होते ही हैं। तो गुणोंका जो परिणमन है, चूंकि धर्मीकी भाँति गुणकी भी अनन्त पर्यायें हैं, उनमें से एक पर्यायको ग्रहण कर रहे हैं, या सबको नहीं, किंतु कुछको ग्रहण कर रहे हैं तो वह गुणांश कहलायेगा, क्योंकि गुण तो त्रैकालिक है, उसमेंसे हम कुछ गुणके परिणमनकी बात करते हैं तो वह गुणांश है। इस प्रकार देश, देशांश, गुण गुणांश, ऐसे विभाग किए बिना, हम वस्तुका सत्त्व नहीं समझ सकते।

देश, देशांश, गुण, गुणांशमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अनर्थांतरता—देश, देशांश, गुण गुणांशका अब और भी मर्म देखिये ! ये चारों ही इन शब्दोंसे कहे जाते हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ! तो जो देश है वह तो द्रव्य है और जो देशांश है वह क्षेत्र है। याने पदार्थके प्रदेशकी अपेक्षासे जो वस्तु बनती है वह अंश-कल्पना किए बिना नहीं बनती। तो उस देशांश कल्पनासे हमने पदार्थ विस्तार जाना और फिर विस्तारका ही नाम क्षेत्र है। यह पदार्थ कितने क्षेत्रमें है ? यहाँ क्षेत्रसे मत-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लब आकाशके क्षेत्रसे नहीं है, किन्तु सद्भूत पदार्थका निजी क्षेत्र। स्वयं वह अपने स्वरूपको कितने विस्तारमें लिए हुए है। वह क्षेत्र होता ही है पदार्थोंमें सो वह तो हुआ देशांश और गुणके मायने भाव है। भावको हम दो दृष्टियोंसे निरख पाते हैं—अभेद दृष्टि और भेद दृष्टि। जब भावको अभेद दृष्टिसे देखते हैं तो एक स्वभावमात्र पदार्थ विदित होता है। जब हम भावको भेद दृष्टिसे देखते हैं तो वहाँ गुणका परिचय होता है। एक स्वभावको भावकी सीमामें ही भिन्न किया गया तो ऐसे उसमें कई भाव नजर आये, उन्हींका नाम तो गुण है अर्थात् पदार्थमें जो शक्ति है उसका नाम गुण है, इसीको कहते हैं भाव। और, उन गुणोंकी जो अवस्थायें हैं प्रत्येक गुणमें होने वाले परिणमन हैं उन परिणमनोंको कहते हैं काल। यों द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चार दृष्टियोंसे पदार्थोंका परिचय किया जाता है, और इन चारो बातोंके परिचयसे ही यह परखमें आता है कि प्रत्येक पदार्थ व उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अन्य पदार्थों से भिन्न है ऐसा विदित होनेपर ही निश्चय किया जा सकेगा कि यह पदार्थ सत् है। इस कारण भेद कल्पना आवश्यक हुई। और, यह भेदकल्पना है आधार इस बातको समझानेका कि सत्ता सप्रतिपत्र होती है वह कहीं निरंकुश स्वतन्त्र नहीं होती है।

एतेन बिना चैकं स्वयं सम्यक् प्रपश्यतश्चापि।
को दोषो यद्वीतेरियं व्यवस्थैव साधुरस्त्विति चेत् ॥ २७ ॥

देश, देशांश गुण, गुणांश माने बिना हो एक मात्र द्रव्यको निरखनेमें निर्दोषताकी आरेका—अब यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि जो देश देशांस गुण गुणांशके कथनसे व्यवस्था कराया है वह भिन्न-भिन्न रूपकी व्यवस्था प्रत्यक्षगोचर तो नहीं है। प्रत्यक्षमें तो केवल एक द्रव्य ही फलीभूत दिखनेमें आ रहा। जैसे जैनशासन में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा है अर्थात् इन्द्रिय द्वारा पदार्थको स्पष्ट जानना उस प्रत्यक्ष से तो पूरा पदार्थ ही नजर आता है। उस पदार्थमें देशांश हैं, क्तियाँ हैं, ऐसी कोई विभिन्नतायें दृष्टिमें नहीं आतीं। तो एक द्रव्य ही माना जाय जो कि प्रत्यक्षमें दिख रहा है तो इसमें कौन सा दोष था? जिसके डरसे ऐसी कल्पना करनी पड़ी जो प्रत्यक्षसे ग्रहणमें नहीं आती। सारांश यह है कि एक देशको ही मान लिया जाय। पदार्थ ही माना जाय कि जो स्थूलरूपसे दिख रहा है, इन्द्रिय द्वारा गोचर हो रहा है उस द्रव्यमें फिर देश देशांश, गुण गुणांश ये चार प्रकारकी कल्पनायें करनेकी क्या आवश्यकता है? और जब चार कल्पनाओंकी आवश्यकता न रही तो फिर सत्ताके सप्रतिपक्षका आधार भी कुछ नहीं रहता? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

देशाभावे नियमात्सत्त्वं द्रव्यस्य न प्रतीयेत।
देशांशाभावेपि च सर्वं स्यादेकदेश मात्रं वा ॥ २८ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देशके अभावमें द्रव्यकी सत्ताकी अप्रतीति—शङ्का यह कही गयी थी कि एक पदार्थ ही मान लीजिए, जैसा कि इन्द्रियसे ग्रहणमें आ रहा है उसमें देश देशांश, गुण गुणांश, यह भेद न माना जाय तो इस ही पर विचार करना है कि यदि पदार्थमें देश देशांश, गुण गुणांश नहीं माना जाता तो पदार्थका परिचय हो सकेगा क्या ? इस ही बातको क्रमसे सुनो ! यदि द्रव्यमें देश नहीं माना जाता याने अनन्त गुणोंका अखण्ड इस प्रकार कहलाया वह देश तो गुण पिण्डरूपसे अगर हम नहीं देखना चाहते हैं पदार्थको, या नहीं देख रहे हैं तो उस द्रव्यकी सत्ता प्रतीत नहीं हो सकती। पिण्ड रूप देश न माना जाय तो द्रव्यकी सत्ता कैसे ज्ञात होगी ? कुछ भी देखा उस देखनेमें देखा क्या ? गुणरहित द्रव्य, पर्यायरहित द्रव्य ? क्या देखा ? जहाँ ही द्रव्य कह देते हैं, कहें जो भी नजर आया वह एक समुदाय है अभिन्न समुदाय, अखण्ड पिण्ड। इस रूपसे न निरखा तो पदार्थ निरखा भी क्या गया ? तो देशके न माननेपर द्रव्यकी सत्ता नहीं ठहरती।

देशांशके अभावमें द्रव्यकी एक प्रदेशमात्रता आदि दोष—अब वह पदार्थ कितना बड़ा है यह भी तो प्रत्यक्षसे दिख रहा है ना ? तो पदार्थ कितना है ऐसा हम प्रत्यक्षसे भी देखते हैं, बुद्धिसे भी सोचते हैं तो पदार्थका विस्तार देशांश स्वीकार किए बिना बन ही नहीं सकता। जैसे किसी वस्तुका कोई परिमाण सोचा जाता है देखा जाता है कि यह वस्तु एक हाथ प्रमाण है। तो जब यह समझमें है कि एक एक अंगुल करके २४ अंगुल बराबर है तब तो समझमें आया देशांश। इसके बिना वह एक परिमाण जाना नहीं जा सकता। बड़ेसे बड़े परिमाणके परिचयमें भी देशका परिचय आधार है। तभी बहुत बड़े परिमाणकी चीज भी कही जायगी जैसे यह एक कोश है तो उस कोशका सही परिचय करने वालेकी दृष्टिमें एक एक इंच, एक एक सूतका जो परिचय है, उसे चाहे अधिक अभ्यासके कारण उपयोगमें नहीं ले रहे लेकिन सोचिए अगर एक सूत या एक इंचका कोई परिमाण नहीं है तो उन सबका समुदायरूप एक कोश भी कुछ चीज नहीं ठहरती। तो पदार्थका विस्तार कि यह इतने परिमाण है, इसके परिज्ञाका उपाय देशांश ही है, और परिमाणके परिचय बिना पदार्थका ज्ञान भी न हो पायगा इस कारण देशांश मानना अति आवश्यक है। उन देशांशोंसे ही तो यह परिचय होता है कि जिस द्रव्यके जितने अंश होते हैं वह द्रव्य उतना ही बड़ा समझा जाता है। इन देशांशोंकी कल्पना करनेसे एक तो विस्तार न जाना जायगा। दूसरे यह दोष है कि सभी द्रव्य बराबर हो जायेंगे। जीव कितना बड़ा ? जितना बड़ा पुद्गल। अजी नहीं, पुद्गल तो एक प्रदेशी है। अणुका तो एक ही परिमाण है और जीव असंख्यात प्रदेशी है। उसका विस्तार नाना प्रकारोंमें देखा जाता है। हाँ ठीक तो है मगर यह सब जाना कैसे गया ? देशांशके परिज्ञानसे ही जाना गया। अणु एक प्रदेशी है। ऐसे ऐसे असंख्यात प्रदेश जीवमें हैं। जब जाना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया कि जीवका परिमाण क्षेत्र अणुके परिमाण क्षेत्रसे असंख्यात गुना है तो देशांशका कार्य हुआ तब ही तो इसे बड़ा समझा गया। अब देशांश हो ही नहीं तो सब द्रव्य समान समझे जायेंगे। अथवा देशांश न माननेपर उनका विस्तार ही कुछ न होगा। और सभी पदार्थ निरंश एक प्रदेशी हो जायेंगे। पर ऐसा है तो नहीं। इससे यह निर्णय रखना चाहिए कि पदार्थ अखण्ड गुणोंका पिण्ड है और उसमें अनेक देशांश हैं। जिसका समूह अखण्ड है वह एक पदार्थ है। तो यों देश देशांशके माने बिना पदार्थका परिचय नहीं हो सकता। अतः देश और देशांश इतना तो मानना ही पड़ेगा।

देश देशांशके परिचयकी सुगमता—गुण गुणांशकी अपेक्षासे देश देशांश का परिज्ञान सभी जीवोंको प्रायः हो रहा है। गुण गुणांश तो इन्द्रिय द्वारा गोचर नहीं होते, पर देश देशांश इन्द्रिय द्वारा विषयभूत हो रहे हैं। यद्यपि देश अखण्ड गुणों के पिण्डको कहते हैं, पर उनके साथ ही साथ प्रदेश समूह भी है। गुण पर्यायवान द्रव्य होता है। तो जहाँ यह पदार्थ देख रहे हैं स्कंध पदार्थ मान लीजिए यद्यपि यह परमार्थतः स्वतंत्र द्रव्य नहीं है मगर अणुवोंका ही तो पिण्ड है और यह भी बिखरा हुआ पिण्ड नहीं है, इसी कारण पुद्गलका भी अस्तिकाय कहा है और संख्यात प्रदेश, असंख्यात प्रदेश अनेकरूपमें बताया गया है, इसे ही दृष्टान्तमें लो। जब हम किसी स्कंधको देखते हैं तो क्या नजर आता है? आकार विस्तार। आकार विस्तार तो कुछ जाना नहीं और उस स्कंधको समझा जाय तो ऐसा कोई समझ पा रहा है क्या? देश देशांशकी कुछ विशेष स्पष्टरूपसे प्रतीति हो रही है तो यह देश देशांश अगर नहीं माना जाता, नहीं नजरमें लिया जाता तो पदार्थ ही क्या जाना गया? तो सिद्ध हुआ कि देशके अभावमें तो द्रव्यकी सत्ता न प्रतीत होगी, इस लिए देशका परिज्ञान करना आवश्यक है और देशांशके न माननेपर या देशांशका अभाव होनेपर सर्व पदार्थ एक देश प्रमाण हो जायेंगे। उन पदार्थोंमें विस्तारकी विभिन्नता न रहेगी कि कौन पदार्थ बड़ा है और कौन पदार्थ छोटा है? इससे यह स्वीकार करना ही होगा कि देश देशांश के परिचयसे ही हम वस्तुका परिचय करते हैं और वह देश देशांश है।

तत्रासत्त्वे वस्तुनि न श्रेयसास्य साधकाभावात्।
एवं चैकांशत्वे महतो व्योम्नोऽप्रतीयमानत्वात् ॥ २६ ॥

वस्तुको असत् अथवा एकांशमात्र माननेमें दोष—ऊपरकी गाथामें बताया गया था कि देश, देशांश, गुण, गुणांश इन चारोंमेंसे यदि देशको न माना जाय तो द्रव्यकी सत्ताका ही निश्चय न होगा। इसपर कोई आग्रह करे कि वस्तु अगर असत् ठहरती है तो ठहरने दो। उसका उत्तर इसमें दिया गया है कि वस्तुको असत्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप स्वीकार करना ठीक नहीं है, क्योंकि वस्तु असत् स्वरूप है, ऐसा सिद्ध करने वाला कोई भी प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्षसे वस्तुका सत्त्व विदित होता है। है वस्तु, बस इसी के मायने उसका सत्त्व है। अन्य प्रमाणसे भी वस्तुका सत्त्व सिद्ध होता है। दूसरी बात यह है कि यदि वस्तुको असत्रूप मान लेते हैं तो इससे कौन सा कार्य सिद्ध होगा ? फिर तो व्यवहार परमार्थ किसी भी कार्यकी सिद्धि न हो सकेगी। इस कारण देश मानना ही होगा याने सब गुणोंका पिण्ड अखण्ड द्रव्य समझना ही होगा। इसी तरह देशांश न माननेपर क्या आपत्ति आती है ? यह बताया था उक्त गाथा में कि देशांशका अभाव होनेपर सभी पदार्थ एक अंशमात्र रह जायेंगे। तो इसपर भी कोई यदि यह हठ करे कि एक अंशरूप रह जाय सब कुछ, तो उसके उत्तरमें इस गाथामें उत्तरार्द्धमें बताया है कि अंशरूप कोई पदार्थ नहीं है। आकाश क्या अंशरूप है ? वह कितना महान है ? यह बात सर्वजन विदित है। फिर अंशमात्र वस्तु माननेसे आकाश महत्ताका ज्ञान कैसे होगा ? इस कारण पदार्थका देशांश भी मानना चाहिए। यों देश देशाँशकी भेदकल्पना जगती है, उससे वस्तुमें जो सत्त्व धर्म है उसकी सप्रतिपक्षता विदित होती है।

किञ्चैतदंश कल्पनमपि फलवत्स्याद्यतोनुमीयेत।
कायत्वमकायत्वं द्रव्याणामिह महत्वममहत्वम् ॥ ३० ॥

पदार्थमें अंशकल्पनाकी फलवत्ता—देशांशके रूपमें जो वस्तुमें अंश कल्पना की गई है अथवा भाव आदिकके रूपमें भी जो अंश कल्पनायेंकी गई हैं वे सब फलवान कल्पनायें हैं। देखिये पहिले देशके सम्बन्धमें ही विचार करिये। अखण्ड पिण्ड देशरूप पदार्थमें जो देशांश परिकल्पित है अर्थात् बहुत विस्तार वाले एक अखण्ड पदार्थमें जो प्रदेशकी परिकल्पना है इस कल्पनाके होनेसे द्रव्योंमें यह भेद सिद्ध होता है कि अमुक द्रव्य अस्तिकाय है और अमुक द्रव्य अस्तिकाय नहीं है। सिद्धान्तमें जैसे बताया है और ज्ञानसे यह बात विदित होती है कि जीव, धर्म, अधर्म, आकाश ये चार द्रव्य अस्तिकाय हैं और पुद्गल भी उपचारसे अस्तिकाय है। यों ५ तो अस्तिकाय बताये गए और कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं किन्तु अकाय है, यह बताया गया। तो अस्तिकाय और अकायका भेद देशांशकी कल्पनासे ही बन सकता है कि जिस द्रव्यमें दो आदिक बहुत प्रदेश होना वह अस्तिकाय है। और जिस द्रव्यमें एक एक ही प्रदेश हो सदैव, वह अकाय है। इसी प्रकार द्रव्योंमें जो यह परिचय किया जाता है कि यह द्रव्य महान है यह द्रव्य छोटा है, यह विभाग भी देशांश कल्पनाके आधारपर ही होता है। तुलना में भी जब यह विचार किया जाता है कि किससे किसमें प्रदेश अधिक हैं, कितने अधिक हैं, तब इस बातोंका समाधान भी देशांशके आधारपर होता है। इस कारण अंशोंकी कल्पना करना सफल है और उसका व्यवहार बनता है, वस्तुका यथार्थ परि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चय भी होता है। किसी भी वस्तुका स्पष्ट परिज्ञान तब होता है जब उसका निजी क्षेत्र, विस्तार ध्यानमें रहता है। यहाँ दिखने वाले स्कंधोंमें तो यह बात स्पष्ट ही है कि घर चौकी, चटाई पुरुष आदिकका जो बोध है सो वहाँ कुछ प्रदेशका, आकारका बोध होता है तब सम्भव है। तो प्रदेशकार विस्तारका बोध हुए बिना पदार्थका परिचय नहीं हो पाता। अतः देशांशकी कल्पनाका पदार्थ परिचयमें बड़ा सहयोग है। अब एक शङ्काकारके इस सम्बन्धमें शङ्का है वह नीचेकी गाथामें प्रकट की जाती है।

भवतु विवक्षितमेतन्ननु यावन्तो निरंशदेशांशाः।
तल्लक्षणयोगादप्यणुवद्द्रव्याणि सन्तु तावन्ति ॥ ३१ ॥

निरंश देशांशमात्र द्रव्य माननेकी आरेका—शङ्काकार कहता है कि आप जो द्रव्यमें निरंश अंशोंकी कल्पना करते हो सो कीजिये ! जिस अंशका दूसरा अंश नहीं हो सकता ऐसे उन अंशोंकी गणनाओंसे विस्तारका परिचय कराना हो तो किसी द्रव्यमें निरंश अंशकी कल्पना करना है तो कीजिए, पर जितने भी निरंश देशांश हैं अर्थात् जितना एक एक प्रदेश माना है उन एक एक प्रदेशोंको एक एक द्रव्य समझ लीजिए। वहाँ यह कल्पना क्यों बनाते हो कि वस्तु तो अखण्ड है और उनमें देशांश है।

निरंश देशांशमात्र द्रव्य माननेकी एक और आरेका—यों जो देशांश है वह प्रत्येक देशांश ही एक-एक द्रव्य है। जैसे परमाणु एक द्रव्य है और फिर जब असंख्यात संख्यात अनन्त परमाणुओंका पिण्ड स्कंध होता है तो उन स्कंधोंमें उन प्रदेशोंकी कल्पना की जाती है कि इसमें अनन्त प्रदेश हैं परमाणु हैं, असंख्यात प्रदेश अथवा परमाणु हैं। यदि ऐसी वहाँ कल्पना की जाती है तो कल्पना होने दो ! परन्तु वास्तविकता तो वहाँ यह ही है कि वह एक-एक निरंश देशांश एक-एक द्रव्य है। एक-एक परमाणु वस्तुतः वह परिपूर्ण एक-एक द्रव्य है। इसी प्रकार जिन पदार्थोंमें भी देशांश माना गया है वे एक-एक देशांश ही एक-एक द्रव्य हैं, ऐसा क्यों नहीं स्वीकार किया जाता ? द्रव्यका जो लक्षण बनाओगे वह लक्षण प्रत्येक अंशोंमें जाता ही है। जो स्वतः सिद्ध हो, स्वसहाय हो, अनादि अनन्त हो सभी बातें स्कंधोंमें भी घटित हो जाती हैं। फिर जो एक एक देशांश हैं उन्हींको पूरा पूरा द्रव्य मान लेना चाहिये। समुदायको द्रव्य माना है। उसरूपसे भी कोई बाधा नहीं आती है। एक देशांशमें भी गुण समुदाय उतना ही है, ऐसा स्वीकार किया गया है कि एक द्रव्यमें जितने गुण हैं वे सभी गुण उस द्रव्यके प्रत्येक प्रदेशमें हैं। उनमें यह बटवारा नहीं है कि द्रव्यके आधे, इस प्रदेशमें यह गुण है, कुछ इस प्रदेशमें यह गुण है, क्योंकि द्रव्य द्रव्यको अखण्ड माना और गुणको सर्व प्रदेश व्यापक माना तो इस कथनमें इतना तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माना ही गया है कि किसी भी द्रव्यमें गुणसमुदाय प्रत्येक प्रदेशमें रहता है और गुण समुदायको द्रव्य कहते हैं। तो जो एक-एक निरंश देशांश है वह भी गुण समुदायरूप है, अतः उस हीको द्रव्य कहलीजियेगा। यह शङ्का निरंश सिद्धान्तवाद सिद्धान्तकी ओरसे हो सकता है। निरंशवादी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारोंमें निरंश अंशको परिपूर्ण स्वीकार करते हैं। जैसे द्रव्यमें एक एक अणु पूर्ण द्रव्य है, क्षेत्रमें एक एक प्रदेश पूर्ण क्षेत्री द्रव्य है, कालमें एक एक परिणमन पूर्ण द्रव्य है और भावमें प्रत्येक अविभागी भाव स्वलक्षण भाव पूर्ण द्रव्य है। तो उस ही सिद्धान्तके अनुसार यह शङ्का है कि प्रत्येक निरंश देशांश ही एक एक द्रव्य होना चाहिए। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि—

नैवं यतो विशेषः परमः स्यात्पारिणामिकोऽध्यक्षः।
खण्डैकदेशवस्तुन्यखण्डितानेकदेशे च ॥ ३२ ॥

खण्डस्वरूप एक एक निरंश देशांशमात्र वस्तु माननेकी प्रमाणवाधितता—उक्त शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि खण्ड स्वरूप देशांशमात्र वस्तु माननेसे अखण्ड स्वरूपकी जो प्रतीति हो रही है उस प्रतीतिमें विरोध आता है। यह बात प्रत्यक्ष है कि अखण्डस्वरूप अनेक प्र शात्मक वस्तुका सत्त्व है। यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार देशांशको ही पूरा पूरा द्रव्य मान लिया जाय तो द्रव्य एक प्रदेशी अथवा खण्ड खण्डरूप हो जायेगा, पर अखण्डरूप अनेक प्रदेशी नहीं ठहर सकता लेकिन वस्तुमें तो सर्वत्र यह विदित हो रहा है कि पदार्थ बहु प्रदेशात्मक एक अखण्ड है। स्कंधोंकी तरह टुकडे हो जायें, बिखर जायें अणु ऐसी बात नहीं है। परमार्थतः स्कंध भी अखण्ड द्रव्य नहीं हैं, वह तो अखण्ड अनेक द्रव्योंका समुदाय है। जो वस्तुतः पदार्थ है जिसका एक परिणमन उन सर्व प्रदेशोंमें होना ही पड़ता है। वह अखण्ड द्रव्य कहलाता है। जैसे यहाँ हम निरखते हैं कि कोई चौकी यदि जल रही, जलना जिस भागमें हो रहा वही भाग जल रहा, सर्व भाग नहीं जलता, तो वहाँ एक परिणमन सर्वत्र नहीं हुआ तब उस एक चौकीको हम एक पदार्थ न कह सकेंगे। वह अनन्त परमाणुओंका पिण्ड है। हाँ एक परमाणुमें जो परिणमन होगा वह उस अणुमें परिपूर्ण होगा। इस नीति के अनुसार एक जीवमें जो परिणमन होता है वह समग्रमें होता है, किन्तु उसका प्रदेश विस्तार बहुत है तब वहाँ देशांशकी कल्पना करनेसे ही उसका परिचय किया जा सकता है।

प्रथमोद्देशितपक्षो यः परिणामो गुणात्मकस्तस्य।
एकत्र तत्र देशे भवितुं शीलो न सर्वदेशेषु ॥ ३३ ॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्यको निरंश देशांशमात्र माननेपर सर्वदेशमें परिणमनकी अनुपपत्ति शङ्काकारने खण्डरूप एक प्रदेशी पदार्थ माननेकी बात कही थी अर्थात् पदार्थमें जब देशांश बताया गया और उस देशांशके पिण्डका नाम पदार्थ कहा तो यह शंका की गई थी कि वह देशांश ही सब प्रथक प्रथक पूर्ण पदार्थ क्यों न मान लिया जाय ? उसके समाधानमें बताया गया था कि खण्डरूप एक देशांशमात्र वस्तु मानने और अखण्ड-स्वरूप अनेक देशात्मक पदार्थ माननेमें परिणमनका भी बड़ा भारी भेद पड़ता है और तब खण्डरूप एक देशांशको एक द्रव्य माननेमें क्या दोष आता है उसकी बात इस गाथा में कही जा रही है। दखिये ! यदि एक देशांशमात्रको पूर्ण द्रव्य मान लिया जाय तो गुणोंका जो परिणमन होगा वह सम्पूर्ण वस्तुमें न होकर एक ही प्रदेशमें होगा। पदार्थ कितने होते हैं इसका परिचय इस पद्धतिसे मिलता है कि यह निरखें कि कोई भी एक परिणमन कितने पूरेमें होना ही पड़ा। जितनेमें वह परिणमन हुआ है वह एक पदार्थ है। अब यहाँ मान लिया गया एक एक प्रदेशको एक एक पदार्थ, तो अब उसमें जो गुण परिणमन होगा वह उस ही प्रदेशमें होगा। सर्वत्र अखण्ड अस्तिकायमें न हो पायगा, क्योंकि शङ्काकार एक देशांशको ही वस्तु समझ रहा है तब गुण परिण-मन भी उस प्रदेशमें ही होगा, सर्वत्र नहीं हो सकता है। कोई यहाँ ऐसा आग्रह करले कि अगर गुण परिणमन एक प्रदेशमें ही हो जाता है तो होने दो। सो ऐसा आग्रह नहीं किया जा सकता। उसमें प्रत्यक्षसे बाधा आती है। इसी बातका अब वर्णन करते हैं।

तदसत्प्रमाणबाधितपक्षत्वादक्षसंविदुपलब्धेः।
देहैकदेशविषयस्पर्शादिह सर्वदेशेषु ॥ ३४ ॥

द्रव्यके एक देशमें ही परिणमन माननेकी प्रमाणबाधितता— खंडस्वरूप एक देशांशका पूर्ण द्रव्य मान लेनेमें यह दोष बताया गया था कि तब एक परिणमन एक प्रदेशमें ही हो जायगा। तो यों एक देशमें परिणमनका प्रसङ्ग आता है। कोई यहाँ ऐसा ही आग्रह करले कि चलो गुणोंका परिणमन एक देशमें ही रहा आये सो इस गाथामें बताया है कि अपने मनके अनुसार कुछ भी समझ लेनेसे बात नहीं बनती। यह तो प्रत्यक्ष बाधित है कि गुणोंका परिणमन एक प्रदेशमें ही नहीं होता, किन्तु उस समस्त अस्तिकायमें होता है। जिसमें प्रमाणसे बाधा आये वह पक्ष किसी भी प्रकार ठीक नहीं गाना जा सकता। देखो यहीं परख लो—इन्द्रियजन्य ज्ञानसे यह बात प्रतीत होती है कि शरीरके एक देशमें अगर कोई स्पर्श हो तो सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच होता है। तो वहाँ हुआ क्या कि एक देशके स्पर्शसे तुरन्त हुआ समग्र आत्मामें ज्ञान और वहाँ उस स्पर्शका लगाव इस ढंगका है उस आत्मामें विकार इस ढंगका है, शरीरमें लगाव भी इस पद्धतिसे है कि उस स्पर्शसे सारे देहमें रोमाञ्च हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है। बात केवल इतनी ही बताना है कि एक अनुभवन वस्तुके समग्र स्वक्षेत्रमें होता है। देखिये ! शरीरप्रमाण आत्मद्रव्य है। इस कारण शरीरके एक स्थानमें एक देशमें स्पर्श होनेसे सारे शरीरमें रोमाञ्च होता है। या यों निरख लीजिये कि जब कभी आत्मामें कोई वेदना होती है तो वह समग्र आत्मामें होती है। यदि शङ्काकार के कहनेके अनुसार एक एक आत्मा मान लिया जाय तो शरीरके जिस हिस्सेमें चोट लगी हो, पीड़ा केवल उतने हिस्सेमें ही होनी चाहिए। लेकिन अनुभव तो दुःखका पीड़ाका सर्वत्र हुआ है ना ! वेदनासे ऊपर उठकर अब ज्ञानकी बात समझिये ! जब कभी यह जीव ज्ञान करता हो तो बतलाओ ज्ञानका अनुभवन परिणमन जानन क्या किसी एक देशमें होता है कि आत्माके सर्व देशमें होता है ? इस सम्बन्धमें इतनी जानकारी और वेदनाओंकी स्थितियाँ ऐसी हैं कि वे पर द्रव्यका निमित्त पाकर होती हैं। इस कारण तुरन्त ऐसा लगता है कि लो, वेदना भी इस हिस्सेमें हुई और ज्ञान भी मस्तकमें हुआ है। इस तरहका कुछ एक देशमें होने जैसा प्रतिभास करते हैं कोई लेकिन यह बात तथ्यभूत नहीं है। वह तो निमित्तकी प्रधानतामें कथन है, भले ही शरीरके किसी अवयवमें फोड़ा फुन्सी हो तो लोग बताते हैं कि हमारे अमुक अङ्गमें दर्द है, और इलाज भी उसी अवयवका किया जाता है। इतनेपर भी बात ऐसी है कि उसके जितनी वेदना होती है, जितना भी कष्टका अनुभव होता है वह आत्मामें सर्वत्र होता है। इसी प्रकार इन्द्रिय मन आदिक विशिष्ट अवयवोंके निमित्तसे यह जीव ज्ञान करता है। तो ज्ञान करते हुएमें भी वे प्रधानता देते हैं उस उत्पत्तिके साधनोंकी लेकिन नैमित्तिक होनेपर भी यह ज्ञान आत्माके सब प्रदेशोंमें होता है। विवेक और अन्तर्ज्ञान से यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है। तो यों यदि एक एक देशांशको पूर्ण द्रव्य मान लिया जाय तो यह दोष आता है कि फिर परिणमन पूर्ण वस्तुमें न होगा, एक ही अंशमें होगा, पर ऐसा है ही नहीं, यह तो प्रत्यक्षसे प्रमाणित है। अब देखिये ! इस ओर कि यदि अखण्ड अनेक प्रदेशी द्रव्य मान लेते हैं तो किस तरह वहाँ परिणमन सिद्ध होता है ?

पृथमेतरपक्षे खलु यः परिणामः स सर्वदेशेषु।
एको हि सर्वपर्वसु प्रकम्पते ताडितो वेणुः ॥ ३५ ॥

दृष्टान्तपूर्वक बहुप्रदेशी अखण्ड द्रव्यकी सिद्धि—अनेक प्रदेशी अखण्डरूप द्रव्य माननेसे जो परिणमन होगा वह सम्पूर्ण वस्तुमें होगा। इस गाथामें एक दृष्टान्त दिया गया है कि देखिये ! जैसे एक वेंत (बाँस) में अनेक पोर होते हैं, बहुत लम्बा भी होता है, सो उस बाँसका एक पोर हिलाया जानेपर सारा बाँस हिलने लगता है। यद्यपि बाँस एक द्रव्य नहीं है, वह अनन्त परमाणुओंका पिण्ड है, और स्कंध अवस्था में आनेसे वह एक द्रव्यकी बात बतानेके लिए दृष्टान्त बन गया है। जैसे बेंतको एक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तरफसे हिलानेपर सब देश हिल जाता है, यों ही द्रव्यमें कोई परिणमन हो वह सब प्रदेशोंमें होगा, यह देशांश और देशके प्रसङ्गमें दृष्टान्त दिया है। गुण और गुणांशके लिए दृष्टान्त नहीं दिया गया। तो चूंकि अनन्त परमाणुओंके प्रदेश एक स्कंधमें बंध रूप हुए हैं, इस कारण देश देशांशके दृष्टान्तमें यह उपयुक्त बैठ जाता है। बेंत एक तरफसे हिलनेपर सर्वदेशमें हिलता है, ऐसे ही द्रव्यमें एक परिणमन होनेपर वह परिणमन द्रव्यके समस्त प्रदेशोंमें होता है। यदि उस बेंतको अखण्ड न माना जाय तो यों ही चाहिये था कि जिस ओर हिलाया बस, उस ओर ही हिल जाती, पर सब ओरसे वहाँ समान हिलना देखा गया है सो यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह बेंत एक अखण्ड है। यों ही वस्तुमें एकमें जो परिणमन हो रहा है वह सब प्रदेशोंमें हो रहा है अतएव सब प्रदेशात्मक वह एक अखण्ड पदार्थ है, यह सिद्ध होता है।

एक प्रदेशवदपि द्रव्यं स्यात्खण्डवर्जितः स यथा।
परमाणुरेव शुद्धः कालाणुर्वा यथा स्वतः सिद्धः॥ ३६॥

एकप्रदेशी द्रव्यमें भी द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—इस गाथामें यह बताया गया है कि कोई पदार्थ एक प्रदेशी भी होता है तो वह पदार्थ उतना ही पूर्ण होता है। उसका विस्तार नहीं है, अतएव द्रव्यका जो लक्षण है वह उतनेमें घटित हो जायगा और परिणमन भी उतनेमें परिसमाप्त हो जायगा। एक प्रदेश वाला है द्रव्य परमाणु और कालाणु। वह अपने आपमें एक प्रदेशी है, उसका भी खण्ड नहीं होता। एक प्रदेशी पदार्थका खंड नहीं होता। इसमें तो किसीको विवाद भी नहीं है। यह अखण्ड एक प्रदेशी द्रव्य, लेकिन यह भी स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वसहाय है और निर्विकल्प है। द्रव्यका, तत्त्वका जो लक्षण बताया गया है वह सब द्रव्योंमें घटित होता है। चाहे वह द्रव्य अस्तिकाय हो, चाहे वह अकाय हो एक परमाणु भी सन्मात्र है, उसका जो सत्त्व है वह उसका लक्षण है। अथवा इतने भेदमें ही क्यों जाय ? वह परमाणु है, बस जो है सो है, सन्मात्र है, क्योंकि स्वतःसिद्ध है, किसी भी सत्को किसीने बनाया नहीं। जो भी सत् है वह अपने आप ही सिद्ध है और इसी कारण वह परमाणु अनादिसे है, अनन्त काल तक है, स्वसहाय है, किसी दूसरे पदार्थ की अपेक्षासे दूसरेके सहयोगसे परमाणुमें सत्त्व आया हो, यह बात कभी भी नहीं कही जा सकती। अतएव वह अखण्ड है, वचनके अगोचर है, इसी प्रकार काल द्रव्यमें भी यह लक्षण घटित होता है, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवअवस्थित है। जो बात जैसी है वैसी ही आचार्य संतोंने बताई है। उस अपने-अपने काल द्रव्यके स्थानपर जो पदार्थ मौजूद है उस पदार्थके परिणमनका कारण उस काल द्रव्यका सकाय परिणमन है। और, यों लोकाकाशमें जितने भी पदार्थ हैं सब पदार्थों का परिणमन होता है कालद्रव्यके समय परिणमनके निमित्तसे। लेकिन आकाश तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोकाकाशके बाहर भी है, लेकिन है तो यह आकाश अखण्ड। तो किसी भी जगह निमित्तके सन्निधान होनेपर किसी भी द्रव्यमें जो परिणमन होगा वह परिणमन समस्त द्रव्योंमें होता है। इस कारण यहाँके कालद्रव्यके परिणमन ही उस सम्पूर्ण आकाशके परिणमनमें निमित्त होते हैं। तो यों काल अरूपी एक प्रदेशी है और वह भी स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है अपने सहायपर ही है। कालका सत्त्व भी किसी परकी अपेक्षाके सहयोगसे नहीं है, अतएव वचनके अगोचर है। ऐसे एक प्रदेशी द्रव्यमें भी जो परिणमन है वह अपने आपमें सम्पूर्ण होता है।

न स्याद्द्रव्यं क्वचिदपि बहु प्रदेशेषु खण्डितो देशः।
तदपि द्रव्यमिति स्यादखण्डितानेकदेशमदः॥ ३७॥

बहुप्रदेशी द्रव्योंमें सर्वप्रदेशात्मक अखण्ड द्रव्यमें द्रव्यत्वलक्षणकी सुघटितता—यद्यपि कालाणु और परमाणु एक प्रदेशी द्रव्य है सो रहे। वह एक प्रदेशी होकर अपने आपमें अखण्ड है। वहाँ अंशोंकी कल्पनाकी गुंजाइस भी नहीं है। अतः स्पष्टतया अखण्ड प्रतीत होती है, लेकिन ऐसा भी कोई द्रव्य नहीं है जो बहुप्रदेशी होकर भी खण्डित रह सके। ऐसे द्रव्य जीव द्रव्य, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य हैं, इनके कभी भी अंश न होंगे। जैसे जीव असंख्यातप्रदेशी है और उसका संकोच विस्तार होनेके कारण अनेक प्रकारका फैलाव भी है, इतनेपर भी कोई जीव खण्डप्रदेशी नहीं होता, इस कारण जो अस्तिकाय है, बहु प्रदेशी द्रव्य है वह अखण्डरूप ही है। उसमें जो शांश हैं वे परिकल्पित हैं। देशांश ही समस्त द्रव्य न बन जायेंगे। कभी दिखनेमें ऐसा आता है कि युद्ध करते समय किसी मनुष्यका शिर अलग हो गया फिर भी धड़ कुछ सेकेण्ड तक अपनी हरकत करता है, शिर अपनी जगह कुछ चलित रहता है। तो कहीं वहाँ आत्माके खण्ड नहीं हुए, देहका खण्ड हो गया। अब कुछ सेकेण्ड जो यह बात रहती है तो वहाँ एक ही अखण्ड है और वह शिर धड़ दोनों में और दोनोंके अंतरालमें बराबर एक आत्मा है। कुछ समय बाद उसका प्राणांत होता और समूचा ही निकलकर दूसरे किसी शरीरको धारण कर लेता है। अन्य भी ऐसी अवस्थायें हैं जिनमें आत्माका कोई विभिन्न प्रकारसे विस्तार होता है, लेकिन है सर्वत्र यह अखण्ड द्रव्य। तो देशमें देशांश परिकल्पित है और देशको समझनेके लिए देशांशकी कल्पना करना अति आवश्यक है। अथवा जैसे जो पदार्थ हैं उसमें उस तरहकी परिकल्पना चलती है। जीवादिक पदार्थ विस्तार तो है ही। इसे कोई मना नहीं कर सकता। एक प्रदेशी नहीं है एक प्रदेश। अब उस विस्तारको जानने और समझानेके लिए जो भी उपाय है वह इस ही प्रकारका उपाय है कि उसके प्रदेश समझ कर उन प्रदेशोंकी गणनासे उस पदार्थका विस्तार बताया जाय, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। जैसे आकाश अनन्त प्रदेशी है, तो उसकी कुछ सीमा बनाकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और वहाँ कोई अविभागी नापसे जैसे कोई इंच या सूतका नाप करे उस नापसे उसका परिमाण बता देते हैं कि यह एक हाथ है, यह एक गज है। तो अविभागी परिमाण है एक प्रदेशी, जिसको कोई मनुष्य कर ही नहीं सकता। और, न एक एक प्रदेश करके कोई माप सकता, लेकिन है वह अविभागी अंश। तो उन देशांशोंसे जैसे आकाशका कोई सीमित परिमाण बता दिया जाता है ऐसे ही प्रत्येक द्रव्यका विस्तार प्रदेश गणनापर निर्भर होता है। तो जो भी बहु प्रदेशी द्रव्य हैं उनमें देशांश माने गए हैं। उस द्रव्यको समझनेके लिए वे समस्त द्रव्य अखण्ड ही हैं। देशांशको पूर्ण द्रव्य मानकर जितने देशांश हैं उतने ही द्रव्य माने जायें यह बात युक्तिसंगत नहीं है।

अथ चैव ते प्रदेशा सविशेषा द्रव्यसंज्ञया भणिताः।
अपि च विशेषाः सर्वे गुणसंज्ञास्ते भवन्ति यावन्तः॥ ३८॥

द्रव्यनामसे सविशेष प्रदेशोंका कथन और गुण नामसे विशेषोंका कथन इस प्रकार यहाँ देश और देशांशका वर्णन किया गया। देश मायने वह समस्त द्रव्य और देशांश मायने उस द्रव्यके एक-एक प्रदेश। तो वहाँ जिन प्रदेशोंकी बात कही गई वे प्रदेश प्रदेश ही क्या हैं? जो पदार्थका विदेश धर्म है उन धर्मोंसे युक्त है। अथवा यों कहो कि पदार्थ स्वयं अपने असाधारण धर्मको लिए हुए है। कितने परिमाण वाला है, यह बात देशांशसे बतायी गयी है। तो जिन देशांशोंका वर्णन किया गया है वे देशांश गुणसहित हैं और यों गुणसहित नहीं कि देशांश कोई भिन्न तत्त्व हो, गुण भिन्न तत्त्व हो। और फिर उन दोनोंका मेल किया गया हो। नहीं, वह गुण पिण्ड ही है और उन गुण पिण्डोंके विस्तारमें देशांश दिखाया गया है। तब गुणसहित उन्हीं देशांशकी द्रव्य संज्ञा होती है। द्रव्य मायने क्या कि सविशेष देशांशका पिण्ड। और गुण मायने क्या? उन देशांशोंमें रहने वाले विशेष। जैसे जीव द्रव्य है वह एक बड़े विस्तारको लिए हुए है तो उस विस्तारमें, उन प्रदेशोंमें कोई कैवल्य हो अर्थात् मात्र प्रदेश हो ऐसी बात क्या हो सकती है? कुछ भी नहीं। जो भी प्रदेश है वह गुणमय है। गुणोंको छोड़कर प्रदेशका कोई न्हाँ अस्तित्व नहीं है। वह गुण ही उतने विस्तारमें है, उसको विस्तारके लिए यह देशांश है। द्रव्य अनन्त गुणोंका समूह है। इस कारण जितने भी द्रव्यके प्रदेश हैं सबमें अनन्त गुणोंका अंश है। यहाँ एक विस्कम्भके रूपमें यह गुणोंके अंशकी बात कही गई है। वैसे गुणका स्वरूप कहीं फैलावके रूपमें नहीं बताया जा सकता। वह तो भावरूप है, और उसका परिचय ऊर्द्धंशके रूप में तो बताया गया है, पर एक विस्कम्भके अंशरूपमें नहीं बताया गया क्योंकि इस प्रकार गुणका जो स्वरूप मर्म है वह परिचयमें नहीं आता। लेकिन प्रदेश गुणसे भिन्न चीज कुछ नहीं है। तब उन प्रदेशोंका और द्रव्यको समझानेके लिए कि है क्या वहाँ वास्तविक, यहाँ एक फैलाव रूपमें गुणांश समझाया गया है। जिससे यह ज्ञान होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि उन गुणों सहित जो प्रदेश हैं उनका पिण्ड ही द्रव्य कहलाता है।

गुणरहित द्रव्यकी व द्रव्यसे पृथक गुणकी असिद्धि—जैसे जीव द्रव्यमें ज्ञानगुण है। ज्ञान गुणसे अलग कर लिया जाय बुद्धिमें और फिर ज्ञान रहित इस जीवके प्रदेश देखे जायें तो क्या मिलेगा ? द्रव्यके स्वक्षेत्रकी विधि ही यही है। वह स्वक्षेत्र गुणमय है, गुणरहित क्षेत्र नहीं है। जैसे आकाशमें अनेक पदार्थ पडे हैं, तो यों उस क्षेत्रसे इन पदार्थोंकी विभिन्नता है। तभी यों भी हो सकता है कि आकाशके उस भागसे उठाकर उन पदार्थोंको दूसरी जगह डाल दिया जाय तब उन पदार्थोंसे रहित आकाश रह गया। ऐसी बात यहाँ देखी जाती है, किन्तु आकाश भिन्न सत् है, और जो अनेक पदार्थ रखे हुए हैं वे भिन्न सत् हैं, किन्तु स्वक्षेत्रमें यह पद्धति नहीं बन सकती। वह स्वक्षेत्र उस वस्तुके प्रदेश गुणमय हैं। गुणोंको ही प्रदेशके रूपमें यहाँ समझाया गया है। अतएव गुण प्रदेशसे जुदे हैं जिससे कि यह सिद्धान्त बन सके कि गुण जुदा सत् है और देशांश अथवा देश जुदा सत् है। एक इस ही पदार्थकी विशेषता ही बतायी जानेके लिए आधार आधेय भावसे द्रव्य और गुणका कथन होता है। जैसे जीवमें ज्ञान गुण है। कहीं जीव पृथक हो ज्ञान पृथक हो ऐसी बात नहीं है। ज्ञानमय ही जीव है। तब जीवका अब जितना विस्तार है वह विस्तार क्या है ? उन अखण्ड गुणोंका विस्तार है। वस्तुतः पदार्थ अवक्तव्य है। अवक्तव्य होनेपर भी इस मनुष्यको ऐसा विशिष्ट मन मिला है, ऐसा ज्ञान विकास है कि जिसके द्वारा उस अखण्ड वस्तुके मर्मको हम कुछ समझ सकते हैं और कुछ बता सकते हैं। वस्तु सर्वथा ही अवक्तव्य नहीं है, किन्तु वक्तव्यकी विधिसे जब वस्तुका मर्म विदित होता है तभी अवक्तव्यपनेकी बात विदित होती है। वक्तव्य होकर अवक्तव्य है, कुछ वक्तव्यता हुए बिना अवक्तव्यपनेकी महिमा भी नहीं जानी जा सकती है। तो देशमें अर्थात् उस द्रव्यमें जो देशांश बताया गया है वह देशांश क्या है ? अनन्त गुणोंका वह विस्तार है। और उसका ही वह अंश है। तब द्रव्य नाम हुआ गुण सहित देशांशोंका अखण्ड पिण्ड। यहाँ तो देश देशांश और गुणकी चर्चा की है और तीनोंकी अखण्डता अभिन्नता बताया ? है उस सम्बन्धमें अब वर्णन करते हैं।

तेषामात्मा देशो नहि ते देशात्पृथक्त्वसत्ताकाः।
नहि देशे हि विशेषाः किन्तु विशेषैश्च तादृशो देशः ॥ ३६ ॥

द्रव्यकी गुणात्मकता—उन गुणोंका आत्मा ही देश है। गुणोंका समूह यहाँ गुणोंका आत्मा इस शब्दसे कहा गया है। अर्थात् वह समूह कोई भिन्न-भिन्न पदार्थोंका नहीं है, किन्तु वह देश गुणात्मक ही है। देशसे भिन्न गुणोंकी सत्ता नहीं है इसी कारण ऐसा नहीं कह सकते कि देशमें गुण रहते हैं। किन्तु उन गुणोंका आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही देश है, द्रव्य हैं। भिन्न-भिन्न सत् पदार्थोंमें कारकभेदकी बात बताई जाती है पर जो स्वरूप है वही है, उसको समझानेके लिए भेद करके बताया जाता है, वहाँ तो वह सब तन्मय ही है। तो यह देश अथवा द्रव्य गुणमय है। गुणसे पृथक देश हो और फिर उन देशोंमें गुणोंका समवाय हो इस तरहसे उसे असाधारण धर्म वाला माना जाय यह बात नहीं बनती। कुछ दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि पदार्थ ७ प्रकारके होते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव सो उन्होंने द्रव्यको और गुणको पृथक पृथक पदार्थ माना है अर्थात् गुणोंकी सत्ता जुदी है, द्रव्यकी सत्ता जुदी है। और वहाँ द्रव्यको आधार माना है, गुणोंको आधेय माना है। द्रव्यमें गुणोंका समवाय माना है, लेकिन न आधार आधेय भाव है, न समवाय सम्बन्ध है, न द्रव्य और गुण पृथक पृथक सत्ता है, किन्तु वह द्रव्य ही गुणात्मक है। एक पदार्थकी विशेषता बताई जा रही है। कहीं वह विशेषता जुदा सत् हो पदार्थ जुदा सत् हो ऐसा नहीं बन जाता गुणात्मक ही द्रव्य है। अतएव द्रव्य आधार है, गुण आधेय है, यह बात नहीं बनती। किन्तु व्याप्य व्यापक भाव बताकर व्यापकको आधार और व्याप्यको आधेय रूपसे समझानेकी पद्धति है। यों देश, देशांश, गुण, गुणांश ये चार भेद किए जाने आवश्यक हैं, और इन्हीं भेदोंकी वजहसे सत्ताको सप्रतिपक्ष कहा गया है।

अत्रापि च संदृष्टिः शुक्लादीनामिय तनुस्तन्तुः।
नहि तन्तौ शुक्लाद्याः किन्तु सिताद्यैश्य तादृशस्तन्तुः॥ ४० ॥

दृष्टान्तपूर्वक द्रव्यकी गुणात्मकताका विवरण—गुण और गुणीमें भेद नहीं, है। गुणोंका ही अभेद पिण्ड द्रव्य कहलाता है। इस विषयको समझानेके लिए इस गाथामें तंतुका दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे डोरा शुक्ल आदिक गुणोंका ही शरीर है। कहीं शुक्लादिक गुण अलग हों, डोरा अलग हो, और यों बताया जाय कि देखो इस डोरेमें सफेदी आदिक गुण है सो ऐसा नहीं कहा जा सकता। भले हीं लोक व्यवहारके लिए उस अभिन्न गुण गुणीका भी आधार आधेय भाव करके कथन किया जाता है। उसका कारण है व्याप्य व्यापक भाव अर्थात् पदार्थमें गुण अनेक होते हैं। तो अनेक होनेके कारण गुण व्याप्य हुए जो गुण है सो ही रहा। दूसरा गुण नहीं बना, लेकिन गुणी व्यापक है अर्थात् उसमें यह भी गुण है और भी गुण हैं, इस तरह का बोध होता है। तो व्यापकका आधार बनाकर व्याप्यको आधेयकी बात व्यवहारमें कही जाती है, किन्तु परमार्थतः गुण गुणी अभिन्न है इस कारण गुणीमें गुण है, डोरे में सफेदी आदिक गुण हैं यो कहना युक्तिसंगत नहीं है किन्तु यह कहना चाहिए कि शुक्ल आदिक गुणोंके द्वारा ही डोरा वहाँ बना है, अर्थात् शुक्ल आदिक गुणोंका अभेद पिण्ड ही वह डोरा है यों ही गुणोंके द्वारा वह द्रव्य वैसा है याने गुणोंका अभेद पिण्ड वह पदार्थ है? तो गुणोंसे पृथक द्रव्य कोई वस्तु नहीं किन्तु गुणमय ही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण गुणी अभेद हैं तब तो वे अवक्तव्य हैं, अखण्ड हैं। इस अखण्डमें देश देशांशका गुण गुणांशका भेद कहना इसका कारण क्या है ? इस शङ्काके समाधानमें यह प्रसंग चल रहा है। तो वहाँ भेद व्यवहार कारण बताया गया। उसका ही एकान्त करके जब शङ्काकारने यह प्रश्न किया, तब भिन्न ही मान लीजिए। गुणभिन्न हैं, पदार्थ भिन्न हैं। फिर उनका समवाय होता है तब गुणोंकी व्यवस्था बनती है। इस एकान्त का भी निराकरण करके यह निर्णयमें आया कि गुण और गुणी परमार्थतः अभिन्न तत्त्व हैं।

अथ चेद्भिन्नो देशो भिन्ना देशाश्रिताविशेषाश्च।
तेषामिह संयोगादद्रव्यं दण्डीव दण्डयोगाद्वा ॥ ४१ ॥

विभिन्न विभिन्न देश और देशाश्रित विशेषोंके संयोगसे द्रव्य माननेकी आरेका—अब शङ्काकार पुनः आशङ्का करता है कि यदि देश भिन्न माना जाय और देशाश्रित विशेषोंको भिन्न माना जाय और फिर संयोगको द्रव्य मान लिया जाय, जैसे कि दंडके सम्बन्धसे पुरुषको डंडी कहते हैं तो इस व्यवस्थामें क्या दोष है ? यह शङ्का पहिले भी की गई थी और वह भिन्न भिन्न रूपसे सिद्ध करनेकी विधिमें कहा गया था यहाँ दृष्टान्त देते हुए संयोग द्वारा गुणी सिद्ध करनेकी बात कही जा रही है। जैसे पुरुष निराला है और डंडा अलग चीज है, तब पुरुष डंडेको पकड़ता है, डंडेका संयोग होता है तो उस पुरुषको डंडी कहते हैं अर्थात् यह डंडा वाला है। ऐसे ही गुण अपनी सत्ता रखता है और द्रव्य अपनी सत्ता रखता है। द्रव्यमें द्रव्यपना है, गुणोंमें गुणपना है, फिर भी भिन्न भिन्न द्रव्य गुणोंका जब संयोग होता है तब वे गुणी कहलाते हैं, द्रव्य कहलाते हैं। ऐसी व्यवस्था माननेमें क्या दोष है? ऐसी आशङ्का की जारही है।

नैवं हि सर्वसङ्कर दोषत्वाद्वा सुसिद्धिदृष्टान्तात्।
तत्किं चेतनयोगादचेतनं चेतनं न स्यात् ॥ ४२ ॥

गुण और द्रव्यको भिन्न-भिन्न मानकर सम्बन्ध माननेमें सर्वसंकरदोष की आपत्ति--समाधानमें कहते हैं कि उक्त शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि द्रव्यको भिन्न और गुणोंको भिन्न मान लेनेपर यहाँ सर्व संकर दोष आयगा। जब गुण भिन्न मान लिया गया और पदार्थ भिन्न मान लिया गया तो अब जो भिन्न हो गए उनमें कोई सम्बन्ध या अभेदकी बात तो रही नहीं कि यह गुण इसी द्रव्यमें रहा करे। वह तो स्वतंत्र वस्तु है। अब उस गुणका सम्बन्ध आज अखण्ड द्रव्यमें है तो फलतः भिन्न द्रव्यमें भी हो सकता है। जैसे एक दृष्टान्त लीजिए ! जीव द्रव्य है और उसमें ज्ञान गुण माना गया है। तो बात तो वास्तविक ऐसी है कि ज्ञानमय जीव है, जीवसे ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पृथक नहीं है। लेकिन आशङ्काके अनुसार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि ज्ञान भिन्न है, जीव भिन्न है, तो जब ज्ञान गुण स्वतन्त्र हो गया तो यह जीवसे ही सम्बन्धित हो, ऐसा नियम तो नहीं बंधा। कभी जीवसे सम्बन्धित हो गया, कभी पुद्गलसे भी सम्बन्धित हो जाय। तो यों पुद्गल भी चेतक बन जायेंगे, क्योंकि अब चेतना गुणको या ज्ञान गुणको गुण तो माना नहीं जीवका विशेष तो माना नहीं, उसे स्वतन्त्र पदार्थ मान लिया। तो जैसे यह ज्ञान गुण जीवमें रह सकता है, उसी प्रकार कभी अजीव जीवमें, पुद्गल आदिकमें भी रह जायगा। फिर तो अजीव भी जीव कहलाने लगेगा और यों फिर पदार्थोंका कोई नियम नहीं बन सकता। जो चाहे जिस रूप हो जाय, पुद्गलका गुण है मूर्तपना, यह मूर्तित्व आज है, कल न रहे तो पुद्गल अधर्म हो गया। धर्म द्रव्यमें पहुंच जाय तो वह मूर्तिक बन गया। फिर पदार्थों का कोई नियम नहीं रह सकता, इस कारण गुणका द्रव्यसे भिन्न सत्त्व वाला मानना मिथ्या है। पदार्थ है, है, वह है कैसा है ? जैसा है सो है ही। अब उसके उस विशेष को बतानेका उद्यम किया गया है, कोई विशेषता बताई गई है। विशेषताका नाम गुण है। तो कहीं गुण उस पदार्थसे पृथक नहीं हो गया। तो वह पदार्थकी विशेषता नहीं कही जा सकती। दोनों स्वतंत्र ही तत्त्व हो गए। तब गणोंको पदार्थसे भिन्न स्वीकार करनेमें सारी अव्यवस्था होती है।

अथवा बिना विशेषैः प्रदेशसत्त्वं कथं प्रमीयेत।
अपि चान्तरेण देशैर्विशेषलक्ष्मावलक्ष्यते च कथम्॥ ४३॥

गुणोंको देशसे भिन्न माननेपर प्रदेश सत्त्वके अभावका प्रसङ्ग— गुणोंको द्रव्यसे भिन्न माननेपर दूसरी आपत्ति यह है कि गुण तो हो गए अलग और प्रदेश देश ये हो गए अगल शङ्काकारकी कल्पनामें, तब गुणोंके बिना प्रदेशका सत्त्व कैसे जाना जायगा ? क्या है वह प्रदेश ? जो गुणरहित है उसका अस्तित्त्व होगा ही क्या ? कैसे अस्तित्त्व होगा ? तो गुणोंके बिना द्रव्यके प्रदेशकी सत्ता नहीं जानी जा सकती, हो ही नहीं सकता और इसी प्रकार प्रदेशके बिना विशेष धर्म भी लक्ष्यमें आ नहीं सकता। हैं गुण और प्रदेश अभिन्न, गुणों को छोड़कर प्रदेश कुछ नहीं हैं, प्रदेश को छोड़कर गुण कुछ नहीं है। वह एक बात है, उसे समझनेके लिए क्षेत्र और भाव की अपेक्षासे वस्तुको जाना जा रहा है। पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप हैं। वे चारों कहीं भिन्न भिन्न नहीं हैं कि पदार्थमें यह द्रव्य है, यह क्षेत्र है, यह काल है, यह भाव है, पदार्थ ही उस रूप है। अब उस रूप अर्थात् जैसा पदार्थ है वैसा समझनेके लिये उसमें भेदव्यवहार करना होता है। तो वह भेदव्यवहार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इस चतुष्टयके रूपमें चलेगा। तो यहां पदार्थका परिचय जब क्षेत्रकी अपेक्षा किया जा रहा है, तो प्रमुखता क्षेत्रस्वरूपकी रही। अतएव प्रदेशका सत्त्व है, इस रूपसे पदार्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पहिचाना गया। और, जब भावकी मुख्यता की तो पदार्थ गुणमय है, इस तरहसे पहिचाना गया। लेकिन यह गुण प्रदेशसे अलग हो और प्रदेश गुणसे अलग हो, यह बात यहाँ सम्भव नहीं है। तो गुणोंको पदार्थसे भिन्न माननेपर यह आपत्ति आती है कि न तो गुणोंका ही सत्त्व रहेगा, न प्रदेशका सत्त्व रहेगा, न कुछ विदित हो सकेगा। अब गुण गुणीको भिन्न माननेमें एक अंतिम दोष और बतला रहे हैं।

अथ चैतयोः पृथक्त्वे हठादहेतोश्च मन्यमानेपि।
कथमिवगुणगुणीभावः प्रमीयते सत्समानत्वात् ॥ ४४ ॥

गुण और द्रव्यको भिन्न माननेपर गुणगुणीभावके अभावका प्रसङ्ग— यदि यह ही हठ की जाय कि गुण और गुणी भिन्न सत्ता वाले होते हैं तो ऐसी अवस्थामें यह दोष आयगा कि भिन्न-भिन्न मान लेनेपर दोनोंकी सत्ता समान रूपसे हो गई। जो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं वे सत्‌के नाते बराबरके सिद्ध हो गए। जब दोनों ही सत् हुए दोनों ही पदार्थ बन गए तो उनमें यह कैसे जाना जा सकता कि यह गुण है और यह गुणी है ? जब गुण समुदायको द्रव्य कहा जाता था जैसे कि स्वरूप है तो समुदायको अर्थात् गुणी और समुदायीको अर्थात् जिनका समुदाय बताया जा रहा है उनको गुण कहते हैं। तो जब अभेद माना तब ना यह व्यवस्था बनी और जब गुण गुणीको भिन्न मान लिया गया तो दोनों ही समानरूप हो गए। जैसे भिन्न भिन्न प्रदेश हैं तो वे दोनों ही स्वतन्त्र सत् हैं। अब स्वतन्त्र सत्‌में वहाँ यह नहीं बताया जा सकेगा कि यह इसका स्व है और यह इसका मालिक है। भिन्न सत् हैं। लोकव्यवहारमें जो प्राणियोंकी यह व्यवस्था बना रखी है कि यह इसका मालिक है, यह इसका धन है, यह केवल मोहकी व्यवस्था है। मोहमें एक कल्पना की हुई है सत्त्वके नाते तो वहाँ यह व्यवस्था नहीं है कि यह इसका धन है, यह इसका मालिक है। जैसे गाय, भैंस, घोड़ा आदिक पशुओंको धन माना है और यह पुरुष मालिक बनता है तो मोहमें बन रहा है ऐसा पर वस्तुके सत्‌में यह बात नहीं पड़ी हुई है कि ये घोड़े आदिक तो धन कहलायें और यह पुरुष मालिक कहलाये। वे सब सत् हैं और सत्त्वके नाते स्वतंत्र हैं, स्वतन्त्र पदार्थमें यह उसका है, ऐसी बात नहीं कही जा सकती। तो यों ही जब गुण और गुणीको भिन्न माननेका हठ बना लिया, न कोई युक्ति है न कोई अनुभवकी बात है फिर भी हठ कर लिया कि गुण और गुणी भिन्न भिन्न सत्तावान हैं। तो भिन्न भिन्न सत्तावान सामान्यतया स्वतंत्र हो गए। अब उसमें यह न कहा जा सकेगा कि ज्ञान तो गुण है और जीव गुणी है। यों भी कहदे कोई कि जीव तो गुण है ज्ञान गुणी है अथवा गुणगुणीकी बात ही नहीं की जा सकती है। तब तो गुण तो गुणीसे भिन्न माननेपर गुणगुणीका अन्तर ही प्रतीत न हो सकेगा। इस कारण गुण और गुणीको भिन्न नहीं माना जा सकता। ये स्वतंत्र पदार्थ नही हैं, किन्तु यह जीव ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानादिक गुणोंके द्वारा इस प्रकार सत् है, यह बात ज्ञानमें आती है।

तस्मादिदमनवद्यं देशविशेषास्तु निर्विशेषास्ते ।
गुणसंज्ञकाः कथञ्चित्परिणतिरूपाः पुनः क्षणं यावत् ॥ ४५ ॥

देशविशेषोंके ही गुणत्वकी सिद्धिका निर्णय—तत्त्वके स्वरूपके सम्बन्धमें उक्त चर्चाके बाद यह बात निर्दोष सिद्ध होती है कि देशविशेष ही गुण कहलाता है और वह देशविशेष निर्विशेष होता है अर्थात् गुणरहित होता है। गुण स्वयं गुण है, गुणमें अन्य गुण नहीं हुआ करते। गुण पिण्ड तो द्रव्य होता है। जिसमें गुण हों उसे द्रव्य कहते हैं। यहाँ द्रव्यका कुछ विस्तार तो है ही, जैसा कि स्पष्ट समझमें आ रहा है। जीव है तो वह भी अपनी किसी वस्तुको लिए हुए है। प्रत्येक पदार्थ अपना प्रदेश विस्तार रख रहा है। तो वहाँ जो एक एक प्रदेशकी बात सोची जा रही थी वह प्रदेश कहीं गुण रहित नहीं है। प्रदेश कुछ अलग चीज हो और उसमें गुण रहते हों, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि समूचा द्रव्य ही गुणमय है। तो उन गुणोंका विस्तार ही वह अंश है प्रदेशमें कि जिससे हम द्रव्यका परिमाण भी बताते हैं। तो देशविशेष ही गुण हुए और गुण स्वयं निर्गुण होते हैं तथा गुण प्रतिक्षण परिणमनशील होते हैं। उनमें उत्पाद व्यय होगा पर कभी गुणका सर्वथा नाश न होगा। वस्तु है अनादि से है, किन्तु सत्त्वमें है, अपनी शक्तियोंमें है। पता रहे तो भी उतनी ही शक्तियाँ हैं, न पता रहे तो भी उतनी ही आत्मामें शक्तियाँ हैं। तो उन शक्तियोंका ही पिण्ड द्रव्य है और विस्तार क्रमसे देखनेपर प्रदेश समझमें आता है, लेकिन वह प्रदेश केवल प्रदेश क्या है ? वह प्रदेश वह देशांश गुणमय है अथवा कहो गुण कहते ही हैं देशविशेषको, द्रव्यमें जो विशेष है वह गुण है, सो गुणमें गुण नहीं रहता। जिसमें गुण हों वह पदार्थ कहलाता है, द्रव्य न कहलाता है, स्वतन्त्र सत् कहलाता है, परिपूर्ण कहलाता है, पर गुण परिपूर्ण नहीं, सत् नहीं, स्वतन्त्र सत् नहीं, किन्तु द्रव्यकी ही एक विशेषता है, जिसे हम असाधारण धर्म कहते हैं। तो यों वह गुण परिपूर्ण है और द्रव्यके आश्रय रहता है तथा स्वयं गुणहीन है।

एकत्वं गुणगुणिनोः साध्यं हेतोस्तयोरनन्यत्वात् ।
तदपि द्वैतमिव स्यात् किं तत्र निबन्धनं त्विति चेत् ॥ ४६ ॥

गुणगुणीके एकत्व होनेपर उनमें भेदकल्पनाके निदानकी जिज्ञासा—गुण और गुणी दोनोंमें एकता है, क्योंकि वे दोनों ही भिन्न भिन्न रहने वाले नहीं हैं, उनमें अनन्यता पाई जाती है, फिर भी गुण गुणीमें द्वैत क्या आया ? जब वह अखंड पिण्ड है तो उसमें भेदकल्पना भी उठी क्यों ? द्वैतभाव सा प्रतीत हुआ ही क्यों ? तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकृत प्रसङ्गमें गुण गुणीको एक कहा जा रहा है, पृथक प्रदेश नहीं है। गुणोंका स्वरूप छोड़कर कोई कुछ द्रव्य नहीं है। सब बातें जब एक हैं तो ऐसे एकस्वरूप पदार्थमें द्वैतकी बात प्रचलित ही क्यों हुई ? और लोगोंकी दृष्टिमें दो और बहु कितनी ही संख्याओंकी गिनती क्यों है ? उत्तरमें कहते हैं :

यत्किञ्चिदस्ति वस्तुः स्वतः स्वभावे स्थितं स्वभावश्च।
अविनाभावी नियमाद्विवक्षितो भेदकर्ता स्यात् ॥ ४७ ॥

स्वभावस्वभावीमें अभिन्नता होनेपर भी विवक्षाकी भेदकल्पनानिदानता
यद्यपि स्वभाव और स्वभावी दोनों ही अभिन्न हैं, इनमें परस्पर भेद नहीं है, फिर भी अपेक्षा कथनसे स्वभाव और स्वभावीमें भेद समझ लिया जाता है। वास्तवमें गुण गुणीमें भेद नहीं है। सर्वत्र एक बात कुछ है तो वह है—जैसा है सो वीतराग संतोंके ज्ञानमें है। रागी पुरुषोंमें वस्तुको ज्ञानमें लेनेके साथ ही साथ उसमें राग और द्वेषकी बुद्धि उत्पन्न होती है। मध्यस्थ ज्ञानी योगीजन केवल उस एक सत्के ज्ञाता होते हैं। तो ऐसे उस अभेदस्वभावी वस्तुका वास्तवमें भेद कुछ नहीं है, परन्तु विवक्षावश उसे भिन्न समझा जाता है। स्वभाव और स्वभावी ये दो अलग अलग पदार्थ नहीं हैं। है कुछ एक और वह है कुछ विशेषताका रूप। इस मार्गसे अगर अपने आपकी परिणति का निर्णय करें तो वहाँ भी यही हो रहा है, मैं हूं और इसका भवन भाव उत्पाद होता रहता है। हम वहां हठ करते हैं तो संसारमें रुलते हैं, हठ छोड़ दें तो जो होता है होने दें। कषाय न रहनेसे, मिथ्याभाव न रहनेसे, वासना न रहनेसे वहाँ कष्ट नहीं है आकुलता नहीं है, कर्मबन्ध नहीं है। तो स्वभाव और स्वभावी ये अभेदरूपसे हैं, वस्तु अपने स्वभावमें रहती है और स्वभाव भी वस्तुसे अभिन्न है। परन्तु समझनेके लिए जब जिसकी विवक्षा की जाती है उस विवक्षासे यह सब भेद उत्पन्न होता है। गुणोंके सम्बन्धमें यह ही अखण्ड पिण्ड गुणी कहलाता है। यह द्रव्य है, ऐसे द्रव्यका समर्थन करनेके लिए कुछ वर्णन किया गया है। तो जिन गुणोंके वर्णनसे हम द्रव्यकी समझ बनाते हैं, वह गुण भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाता है। उसका वर्णन है :

शक्तिर्लक्ष्मविशेषो धर्मो रूपं गुणः स्वभावश्च।
प्रकृतिशील चाकृतिरेकार्थवाचका अमी शब्दाः ॥ ४८ ॥

शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म व रूपकी गुणपर्यायवाचिता शक्ति, लक्ष्म, विशेष, धर्म, रूप, गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील, आकृति ये सब एक अर्थके वाचक हैं। अर्थात् ये सभी गुणके नाम हैं। अब जिस शब्दसे गुण वाच्यसे यह ग्रहण किया गया उस शब्दकी व्युत्पत्तिपर दृष्टि दें तो गुणोंकी नित्यता जाहिर होती है गुणपर्यायवाची

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शब्द कहनेसे। वे क्या क्या नाम हैं ? प्रथम बताया है शक्ति। पदार्थमें जो शक्ति है, जिस जिस रूप परिणमनेकी योग्यता है, शक्ति है, वह पदार्थोंका गुण कहलाती है। शक्तिसामान्य और शक्तिविशेष—जब हम शक्ति सामान्यपर दृष्टि देते हैं तब वह हम को एक तन्मय गुण ज्ञात होता है और जब हम शक्तिविशेषपर दृष्टि देते हैं तो हमें अन्य द्रव्योंसे पृथकता किए जानेका एक साधन मिलता है। तो गुणका एक नाम है शक्ति। पदार्थमें जो शक्ति है उसे ही गुण कहते हैं। जीवमें जाननेकी शक्ति है उसका नाम रखा गया ज्ञानगुण। यद्यपि ज्ञानगुण यहाँ समझमें नहीं आ रहा है लेकिन जीव तत्त्वको हम जानें तो शक्ति अंशसे जाननेपर हमें उसके गुण प्रकट होते हैं। इस ही गुणका दूसरा नाम है लक्ष्य, मायने लक्षण जो उस वस्तुसे अभिन्न हो, पर उसे व्याप्य बनाया समझनेका व्यवहार बनानेके लिए, शक्ति और लक्ष्म पदार्थमें जो लक्षण विदित होता है वह उस पदार्थका गुण ही तो है, जिससे पदार्थका परिचय किया जाता है। अब तीसरा शब्द है विशेष। पदार्थमें जो विशेषता ध्यानमें आई, पदार्थ तो अनन्त हैं, अनेक प्रकारके हैं। उन पदार्थोंमें से जो एक विशेष समझमें आया है, जिससे अन्य वस्तुओंको छोड़कर विवक्षित वस्तुको ग्रहण किया गया है वे सब विशेष गुण कहलाते हैं। जीव भी सत् है, पुद्गल आदिक भी हैं, उनमेंसे जीवका ज्ञान बना, उस वास्ते सत्को विशेषरूपमें समझाया जायगा। इसीका नाम है विशेष। गुणका नाम है धर्म, जो पदार्थ अपनेमें जो स्वभाव रखता है वह उस पदार्थका गुण कहलाता है। वह धर्म जो पदार्थमें तन्मयतासे शाश्वत रहा हो ऐसा धर्म वस्तुमें अनादिसिद्ध है और तन्मय है इसी गुणका दूसरा नाम है रूप ! इस वस्तुका रूप क्या है ? रूपसे यहाँ चक्षुइंद्रिय-जन्य वर्णसे प्रयोजन नहीं है। वह भी एक परिचयका उपाय है पर यहाँ वस्तुका रूप पूछा जा रहा है तो उसके मायने है वह सर्वस्व।

गुण, स्वभाव, प्रकृति, शील व आकृतिकी गुणपर्यायवाचिता—गुणपना जो पदार्थके प्रत्येक अंशमें पाया जाय, उसे कहते हैं रूप। जो देखा लिया जाय, परख लिया जाय उसका नाम है रूप। तो रूप भी गुणका पर्यायवाची शब्द है और गुण, गुणका नाम प्रकट करता ही है। गुणका अर्थ है—गुण्यते भिद्यते अनेन स गुणः अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थ भिन्न किया जाय उसे गुण कहते हैं। सभी पदार्थ सत् हैं। अब उन समस्त सत् पदार्थोंमेंसे एक जीव पदार्थको हमें न्यारा देखना है। उसका आश्रय लेते हैं तो वहाँ भेद कर देने वाला अर्थात् अन्य पदार्थोंसे यह विलक्षण पदार्थ है, ऐसा जता देने वाला जो कुछ रूपक हुआ, प्रशंसा हुई उस हीका नाम गुण है। गुणका एक नाम है स्वभाव। स्वभाव अभेद विधिसे भी और भेद विधिसे भी देखा जाता है। वस्तुका स्वभाव एक होता है लेकिन जब भेददृष्टि करके उन स्वभावों की परख करते हैं तो वे स्वभाव अनेक रूपमें भिन्न–भिन्न विदित होने लगते हैं, ऐसी अवस्थाको गुण कहते हैं। स्वभाव प्रकृति, जो संस्कार हो, जो प्रकृति हो, जिस रूपमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ढलनेकी विधि हो वह प्रकृति है। और, यही शील कहलाता है। जो शाश्वत है, स्व-भाव है, जो सहजभाव है, वह कहलाता है शील। और, गुणका पर्यायवाची शब्द है आकृति। यहाँ भी आकृतिका अर्थ प्रदेश विस्तारमें नहीं लेना है। जैसे माप हो जाता है क्षेत्रका इस तरह यहाँ गुणोंका माप हो जाय आकृतिके आलम्बनसे उसे आकृति कहते हैं। आकार पूछा जानेपर समस्त भेदोंकी चर्चा नहीं हुई। एक आकार मायने व्यक्तरूप। तो यों ये सब शब्द गुणके पर्यायवाची हैं और इन सब शब्दोंके वाच्य जाननेसे गुणोंकी तारीफका ज्ञान होता है, पर गुणोंके परिज्ञानमें स्पष्टता प्राप्त होती है, यों गुणका अखण्ड पिण्ड द्रव्य हुआ उस अखण्डपिण्डमें भेद किए जानेका कारण है।

देशस्यैका शक्तिर्या काचित् सा न शक्तिरन्या स्यात्।
क्रमतो वितर्क्यमाणा भवन्त्यनन्ताश्च शक्तयो व्यक्ताः॥ ४६ ॥

द्रव्यमें अनन्त गुणोंकी प्रतीतिसिद्धता—द्रव्यमें शक्तियाँ अनन्त बताई गई हैं तो उनमें पदार्थकी कोई एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप नहीं होती। ऐसा प्रत्येक शक्ति का स्वरूप विचारकर और चूंकि उस शक्तिका कार्य उसमें ही है, किसीका कार्य किसी में बदलता नहीं है, यों वे भिन्न भिन्न शक्तियाँ अनन्त विदित हो जाती हैं। पदार्थ हैं शक्तियोंका पिण्ड उनमें है, जो वे परिणमते हैं। तो जब परिणमनेमें भेद समझमें आया तो उससे शक्तियोंका भेद किया गया है। कोई पदार्थ जिस व्यक्तरूपमें परिणम जाता है वहाँ वह व्यक्तरूप अनेक दीखा अथवा समझा, तो जितने वे अनेकरूप हैं परिणमन उतनी ही उस पदार्थमें शक्तियाँ समझनी चाहिए। वे परिणमन कुछ तो विदित होते हैं, कुछ भिन्न होकर भी अविदित हैं। यों शक्तियाँ विदित और अविदित एक पदार्थमें अनन्त होती है। शक्तियाँ एक दूसरेसे भिन्न हैं। यद्यपि वे सब शक्तियाँ एक ही पदार्थ में तन्मय हैं, उनके प्रदेशभेद भी नहीं हैं। जो प्रदेश एक शक्तिका है वही प्रदेश अन्य शक्तिका भी है। प्रदेशभेद न होनेपर भी उनमें स्वरूपभेद है। जैसे कि आगेकी गाथा में बताया कि स्पष्ट विदित हो जायगा कि वे शक्तियाँ अनेक क्यों हैं? तो देशदेशांश, गुणगुणांशके भेदके प्रकरणमें अब इस समय यह बताया जा रहा है कि देशमें अनन्त गुण हैं। गुणोंके पर्यायवाची शब्द अभी कहे गए थे। उनमें सर्वप्रथम नाम शक्तिका बताया। इन गुणोंका अनेक नामोंसे, अनेक विशेषताओंके साथ परिज्ञान होता है। शक्ति कहते हैं योग्यताको, उस प्रकारके परिणमनकी शक्तिको। वह है स्वभावका अंश। तो सभी नामोंसे स्वभावका अंश ही विदित कराया गया है। मगर नाम अर्थके भेदसे उनमें कुछ नवीन बात विशेषतया विदित होती है। जैसे लक्ष्म चिन्ह कहा तो जो अनेक पदार्थोंसे जुदा करा देवे ऐसे चिन्हका नाम है गुण। तो वस्तुमें जो शाश्वत् ऐसा कोई चिन्ह रहता हो, जो अन्य पदार्थोंसे इसकी पहिचान अलग करादे वह यही, गुण तो है, किसी भी प्रकार इस ही शक्ति तक तो पहुंचे। जब विशेष शब्दको कहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया गुण तो उसके मायने हुआ उस पदार्थकी विशेषता। तो विशेषता क्या है ? जो हो सो ही तो बताया जायगा। तो पदार्थमें जो स्वाभावांश है, शक्ति है वही विशेष शब्दसे ध्वनित होता है। यहाँ पदार्थगत इस मर्मको शीघ्र समझनेके लिए शक्ति नाम से समझाया गया है। तो यों पदार्थमें शक्तियाँ अनन्त हैं और वे सब एक दूसरेसे भिन्न भिन्न हैं। अब वे शक्तियाँ क्यों भिन्न हैं ? सो उत्तर देते हैं।

स्पर्शो रसश्च गन्धो वर्णो युगपद्यथा रसालफले।
प्रतिनियतेन्द्रियगोचरचारित्वात्ते भवन्त्यनेकेपि ॥ ५० ॥

द्रव्यमें अनन्तशक्तियोंकी परस्पर भिन्नताकी दृष्टि— जैसे कि आमके फलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चारों ही एक साथ पाये जाते हैं। और वे चारों पाये जाते हैं एक साथ, फिर भी हैं परस्परमें भिन्न भिन्न। अर्थात् स्पर्श रस नहीं बन गया, रस स्पर्श आदिक नहीं बन जाता। और उनकी प्रतीति जो भिन्न भिन्न इंद्रिय द्वारा होती है उससे भी इसका समर्थन मिला कि वे स्पर्श आदिक गुण परस्परमें भिन्न भिन्न हैं और हैं एक ही पदार्थमें। जिस प्रदेशमें स्पर्श है उसी प्रदेशमें रसादिक हैं, ऐसा होनेपर भी भिन्न भिन्न हैं, तभी तो भिन्न भिन्न इंद्रिय द्वारा वह विदित किया जाता है। स्पर्शन इंद्रियके द्वारा आमके फलमें जो स्पर्श है वही जाना जाता है, रसना इंद्रियके द्वारा रस जाना जा रहा, घ्राण इंद्रियके द्वारा गंधका ज्ञान होता और चक्षु इंद्रियके द्वारा रूपका ज्ञान होता है। तो भिन्न भिन्न इन्द्रियके ये विषय हैं इससे भी यही जाहिर होता है कि ये चारों गुण परस्पर भिन्न हैं। यदि स्पर्श रस आदिक रूप बन जायें तो रस भी स्पर्शादिक रूप बन जाय। यों अटपट परिवर्तन हो तो कुछ भी न रहेगा, न स्पर्श न रूप। तो जैसे पुद्गलमें ये चार गुण हैं और हैं भिन्न भिन्न स्वरूप वाले, इसके कार्य भी तो भिन्न भिन्न हो रहे। स्पर्श गुण का कार्य है—रूखा चिकना, ठंडा, गर्म आदिक होना, और रस गुणका कार्य है—खट्टा मीठा कड़वा आदिक होना। तो इन कार्योंमें तो प्रकट भेद है। जो खट्टी मीठी जैसी बात है वह रूखा चिकना तो नहीं है, भिन्न इंद्रिय द्वारा प्रतीत है, इसका स्वरूप भी परस्परमें भिन्न भिन्न है। गंध गुणका कार्य है सुगंध दुर्गन्ध होना, यह बात अन्य गुणके कार्य से बिल्कुल भिन्न है। रूप गुणका कार्य है काला, पीला आदिक होना। तो यह भी कार्य बिल्कुल भिन्न है तो विभिन्न कार्य होनेसे और भिन्न भिन्न इंद्रिय द्वारा परिज्ञान होनेसे ये सब गुण परस्परमें भिन्न भिन्न हैं, यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है ऐसे ही सभी पदार्थोंमें गुणोंकी बात समझना चाहिए कि सभी गुण परस्परमें भिन्न भिन्न होते हैं। अब परमार्थतः देखा जाय तो वहाँ तो एक अखण्ड कोई सत् है और उसका एक अखण्ड स्वभाव है और प्रतिसमयमें एक अखण्ड परिणमण है। परमार्थ दृष्टिसे तो यह नजर आता है फिर भी भेददृष्टिमें जो विदित होता है वह कभी विप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रीत नहीं जाना जा रहा है। पदार्थमें जो बात समाई हुई है वही जानी जा रही है। इसलिए भेदव्यवहारमें जो शक्तिभेद जाना गया, जो स्वभावांश विदित हुआ, जिसके समुदायमें एक अखण्ड स्वभावकी प्रतीति की जाती है वह सब स्वभावभेद अथवा गुण विपरीत नहीं है, मिथ्या नहीं है। है उसमें, लेकिन हैं सब अभेदरूप, अखण्डरूप। प्रत्येक प्रदेश ही अन्य समस्त गुणोंके द्वारा उस रूप है। इस कारण परमार्थसे तो अखण्डता है और व्यवहारदृष्टिमें उसका खण्ड किया गया है। स्वभावके अंश बताये हैं। उन्हीं शक्तियोंकी बात चल रही है कि ये सब शक्तियाँ पदार्थमें अनन्त होती हैं। अब जीव पदार्थमें इन गुणोंका उदाहरण बतलाते हैं।

तदुदाहरणं चैतज्जीवे यद्दर्शनं गुणश्चैकः।
तन्न ज्ञानं न सुखं चारित्रं न कश्चिदितरश्च ॥ ५१ ॥

जीवमें अनन्त गुणोंकी परस्पर अन्यताकी दृष्टि—सभी गुण परस्पर भिन्न भिन्न हैं। उन गुणोंमें स्वरूप भेद है। इसका उदाहरण यह है कि जिस जीव द्रव्यमें जितने गुण विदित हुए उन सब गुणोंका स्वरूप भिन्न है। जैसे जीवमें दर्शन, ज्ञान, आनन्द, चारित्र आदिक अनेक शक्तियां हैं, तो उन शक्तियोंका स्वरूप निराला हैं एक दूसरेसे। जो दर्शन गुण है वह ज्ञान नहीं हो जाता। उनका कार्य ही जुदा जुदा है। दर्शनका कार्य है सामान्य प्रतिभास आनन्दका कार्य है सुख दुःख आनन्द आदिक किसी रूपका अनुभव। और, चारित्र गुणका कार्य है किसी ओर लग जाना, लीन हो जाना। तो ये सब कार्य भिन्न भिन्न हैं, अतएव ये शक्तियां भी भिन्न भिन्न विदित होती हैं। यदि ज्ञान दर्शन आदिक किसी रूप हो जायें, दर्शन आनन्द आदिक अन्य किसी रूप हो जायें तो पदार्थमें फिर कुछ भी न रहा, कोई गुण ही न रह सका। तो ये सब गुण किसी अन्य गुणरूप परिणम नहीं जाता, अतएव पदार्थमें शक्तियाँ अनन्त हैं, उन्हीं अनन्त शक्तियोंका अभेद पिण्ड पदार्थ है। ये गुण और गुणी भिन्न भिन्न चीजें नहीं हैं, ये कोई पृथक् स्वतंत्र सत् नहीं हैं, सत्के अंश हैं। अब सतके अंशको न हम सत् ही कह सकते न असत् ही। अगर यह गुण असत् है तो असत्का पिण्ड सत् न होगा और यदि यह गुण सत् है तो सत् होनेके कारण ये स्वतंत्र पदार्थ हो गए, आत्मा स्वतन्त्र पदार्थ हो गया। अब स्वतन्त्र पदार्थमें गुण गुणीका व्यवहार नहीं हो सकता, और फिर यह व्यवस्था नहीं बन सकती कि ज्ञान गुण आत्मामें ही रहे। जब ज्ञानगुण स्वतंत्र है आत्मा स्वतंत्र है तो किसीमें कोई रहे इसका आधार ही कुछ न रहेगा। रही सम्बंधकी बात, जैसे कि कोई कार्य कर लिया तो वहाँ भी अगर ज्ञानका आत्माने सम्बंध किया तो आत्मा चेतन कहलाया। कभी यह ज्ञान पुद्गलका सम्बंध कर बैठा तो पुद्गल चेतन हो गया, फिर तो कोई पदार्थकी व्यवस्था ही न रहेगी। इससे इन गुणोंको न तो सत् कहेंगे, न असत् कहेंगे किंतु सतके अंश कहे जायेंगे। जैसे कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समुद्रका जो बूंद बूंद है तो वह एक एक बूंद समुद्र है या असमुद्र ? अगर यह कहा जाय कि बूंद तो समुद्र नहीं है वह तो असमुद्र है तो असमुद्रका समुदायमें समुद्र बन नहीं सकता। और कहा जाय कि एक-एक बूंद समुद्र है तब तो वहाँ अनगिनते समुद्र हो गए और जो समुद्रका कार्य लिया जाय तो उसके बूंद कर दें पर समुद्रका एक बूंद समुद्रका कार्य तो नहीं बन पाता। उसमें जहाज चले उसमें स्नान हो जाय, एक बूंद की यह बात नहीं बनती। तो जैसे समुद्रकी बूंद न समुद्र है किन्तु समुद्रका अंश है इसी तरह ये शक्तियाँ ये न सत हैं न असत हैं किंतु सतके अंश हैं और ये परस्परमें एक दूसरे से भिन्न स्वरूप रख रहे हैं तभी तो ये अनन्त रह पायेंगे। यों अनन्त शक्तियोंका अभेद पिण्ड पदार्थ होता है।

एवं यः कोपि गुणः सोपि च न स्यात्तदन्यरूपो वा।
स्वयमुच्छलन्ति तदिमा मिथो विभिन्नाश्च शक्तयोऽनन्ताः ॥५२॥

एक द्रव्यमें अनन्त शक्तियोंका उच्छलन—उक्त कुछ कथनोंमें इन शक्तियों के सम्बन्धमें कुछ उनका स्वरूप दर्शाया गया था। उस पद्धतिका जो स्वरूप प्रतीत हो, जिससे यह विदित हो कि कोई सा भी गुण किसी दूसरे गुणरूप नहीं हो सकता है। तो ये शक्तियाँ क्या हैं ? ये परिपूर्ण सत् नहीं हैं, ये अनन्त शक्तियाँ परस्पर भिन्न स्वरूपको लिए हुए हैं, और ये भिन्न-भिन्न कार्यों द्वारा स्वयं उदित होती हैं, उछलती हैं, इन शक्तियोंका परिज्ञान उन शक्तियोंके कार्योंके द्वारा किया जाता है। जैसे आत्मामें जाननेका परिणमन बन रहा है सर्वलोक विदित हैं कि जानन किसे कहते हैं। तो उस जाननरूप कार्यके द्वारा हमें यह बोध हो रहा है कि इस पदार्थमें आत्माको जाननेकी शक्ति है तभी तो जानना हो रहा है। तो कार्यों द्वारा शक्तिका अनुमान बनता है। तो ये सब शक्तियाँ जो उठ रही हैं, द्रव्यमें विदित हो रही हैं वे सब भिन्न-भिन्न कार्यों-द्वारा विदित होती हैं। अभी जब परमार्थ दृष्टिमें थे तब वहाँ सब अद्वैत भास रहा था। अद्वैत मायने सर्वाद्वैत नहीं किन्तु विशिष्टाद्वैत। प्रत्येक पदार्थ अपनेमें पूर्ण सत् है, और वह केवल एक है। वहाँ कोई दूसरा नहीं है। एक सत्में द्वैतका प्रवेश नहीं है। प्रत्येक सत् अद्वैतरूप है और उसका स्वभाव भी एक है अद्वैत है। जो है सो ही है। उस स्वभावमें भी अंश भेद नहीं किया है, और उस द्रव्यमें जो परिणमन है वह है एक परिणमन। तो यहाँ अनन्त शक्तियोंकी बात और अनन्त कार्योंकी बात दृष्टिमें न थी। अब दृष्टि वही है जिसके सम्बन्धमें पहिले परमार्थ दृष्टिसे विचारा था। अब व्यवहार दृष्टिसे विचार होता है तो यह बात भी प्रमाण सिद्ध विदित होती है कि इस पदार्थमें इतने कार्यरूप परिणमन होता है और इतनी उनमें शक्तियाँ हैं। तो पदार्थमें ये सब शक्तियाँ भिन्न भिन्न हैं, एक दूसरे रूप बन नहीं सकतीं, अतएव अनन्त शक्तियाँ हैं और अपने अपने विभिन्न कार्यों द्वारा स्वयं उदित होती हैं। उछलती रहती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। देखिये ! वही अखण्ड द्रव्य अब व्यवहार दृष्टिमें कैसा अनन्त वैभववान, उछलती हुई शक्तियोंसे जगमगरूप विदित हो रहा है। दोनों दृष्टियोंसे पदार्थका सही निर्णय हो पाता है। भले ही फिर किसी दृष्टिकी प्रधानतामें उस पदार्थका परिज्ञान चल रहा हो लेकिन स्पष्ट परिज्ञान उस हीका कहा जायगा जो भेददृष्टि और अभेददृष्टिसे पदार्थका परिचय प्राप्त करे। यहाँ एक बात यह कही गई कि तत्त्व अखण्ड है, निर्विकल्प है, सन्मात्र है, स्वसहाय है, स्वतः सिद्ध है, उस तत्त्वका परिज्ञान देश, देशांश, गुण, गुणांशके रूपमें किया जा रहा है। उसमें देश, देशांश और गुण इन तीनका वर्णन किया गया। देशके मायने वह परिपूर्ण द्रव्य। देशांशका अर्थ है उस द्रव्यके प्रदेश और गुणके मायने है द्रव्यकी शक्ति। उन शक्तियोंके अंशोंकी बात कह रहे हैं।

तासामन्यतरस्या भवन्त्यनन्ता निरंशका अंशाः।
तरतमभागविशेषैरंशच्छेदैः प्रतीयमानत्वात् ॥ ५३ ॥

तरतमविशेषरूप अंशच्छेदोंके द्वारा गुणोंके अंशोंकी सिद्धि— उन शक्तियोंमें किसी भी शक्तिके अनन्त निरंश अंश होते हैं। उन गुणोंमें भी अंश होते हैं। ये अंश देशांशकी भाँति निष्कर्म क्रमको लिए हुए नहीं हैं। जैसे पदार्थ इतने विस्तार वाला है, इतने क्षेत्रमें फैला हुआ है। अब वहाँ प्रदेशभेद करें इस तरहका अंशभेद गुणोंमें नहीं होता, क्योंकि गुण प्रत्येक प्रदेशमें है और प्रत्येक प्रदेशपर जो एक गुण है ऐसे ही अनन्त गुण हैं, क्योंकि गुणोंसे ही वह प्रदेश बना है, विदित होता है। गुणमय है चीज। तो जैसे समस्त गुण प्रत्येक पदार्थमें रहते हैं ऐसे ही अन्य गुणके जो अंश किये जा रहे हैं वे अंश भी प्रत्येक प्रदेशमें रहते हैं। तो उन शक्तियोंके जो अनन्त निरंश अंश हैं वे हीनाधिककी विशेषतासे परिज्ञात होते हैं। गुणोंके विकासके अंश और उन विकासोंके कारण अंश विभाग समझा गया है। ऐसे निरंश अंशकी जो कमसे कम वृद्धिमें आती हो याने अब यह पदार्थ एक अंश और बढ़ गया, इससे गुण एक अंश और बन गया, ऐसा जो कमसे कम वृद्धिमें आ सकता है उसे यहाँ निरंश अंश समझ लिया जाय। यद्यपि उस वृद्धि वाले अंशमें भी अनेक अंश परिकल्पित हैं लोक व्यवहारकी समझमें तो भी एक अंश जो कमसे कम वृद्धिमें है वह आ रहा है। जैसे बुखार मापनेका जो थर्मामीटर यंत्र होता है उस यंत्रमें बुखार एक एक अंश विदित होता है। जैसे कि मानो १० बिन्दुओंसे १ डिग्री बनी तो उस एक बिन्दुमें भी अनेक अंश हो सकते हैं मगर व्यवहारमें, कहनेमें, समझमें जो एक वृद्धि अंश आता है वह डिग्री बताई गई है। यों पदार्थमें जितनी शक्तियाँ हैं उन सब शक्तियोंके अनेक निरंश अंश होते हैं। उन निरंश अंशोंका जो समुदाय है वही एक पूर्ण शक्ति है और ऐसे ऐसी अनन्त शक्तियोंका जो अभेद पिण्ड है उसे पदार्थ कहते हैं। यों तत्त्वका परिचय देश देशांश और गुण गुणांशके परिचयसे प्राप्त होता है और इसी कारण बताया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गया कि सत्ता सप्रतिपक्ष है। अगर सत्ता सत् है तो असत् भी है, एक है तो अनेक भी है। ये सब बातें इस देश देशांश गुण गुणांशके रूप होनेसे बनती हैं : तो सप्रतिपक्षता के होनेका आधार यहां ये देश देशांश आदिक भेद बताये गए हैं।

दृष्टान्तः सुगमोऽयं शुक्लं वासस्ततोपि शुक्लतरम्।
शुक्लतमं च ततः स्यादंशाश्चैते गुणस्य शुक्लस्य ॥ ५४ ॥

दृष्टान्त द्वारा गुणांशोंका स्पष्टीकरण—गुणोंके अंश होते हैं लेकिन वे अंश देशांशकी तरह नहीं हैं कि विस्तारको लिए हुए हो। जैसे एक पदार्थ कितने ही लम्बे चौड़े विस्तारमें है तो उसका उसमें उर्द्धक्षेत्र कर करके जो अन्तिम अविभागी अंश है वह देशांश कहलाता है, इस तरह विस्तार क्रमसे गुणोंके अंश नहीं होते किन्तु गुणोंमें नतंमताके अंश होते हैं। जैसे विस्तार है तो कोई कपड़ा कम सफेद है कोई उससे अधिक सफेद है कोई उससे भी ज्यादा सफेद है तो ये सब शुक्लगुणके अंश हुए, अब उस कपडेमें जो सफेदीके अंश हैं वे तर्तमताके अंश हैं और सफेदी जिस प्रकार व्यक्त होती है उसके अविभागी अंश बनाये गए हैं अथवा जैसे दूधकी चिकनाई, कोई दूध कम चिकना होता है कोई विशेष चिकना होता है और उस चिकनाईके अंश भी लोग परिकल्पित करते हैं जैसे १०० डिग्री अंशकी चिकनाई हो तो वह सबसे अधिक चिकनाई मानी जाती है। उसके अनुसार किसी दूधमें कहना कि इसमें ५० डिग्री चिकनाई है इसमें ६० डिग्री चिकनाई है, तो यों सोचते हुएमें जो एक डिग्री कल्पनामें आयी वह चिकनाईका अविभागी अंश है, और यों तर्तमताके ढंगसे सफेद गुणके अंश हुए। तो इस तरह गुणोंके अंश गुण विकासकी डिग्रियोंके अनुसार हैं। प्रदेशके अनुसार नहीं हैं। प्रत्येक प्रदेशमें सभी गुण रहते हैं। तो गुणोंके अंश भी प्रत्येक प्रदेशमें रहते हैं इसलिए गुणांशके विभागके लिए विस्तारक्षेत्र न होगा किन्तु उनके गुणोंका तर्तमताका छेद होगा। जैसे किसी मनुष्यका बुखार है तो मानो १०४ डिग्री बुखार है अब १०२ डिग्री रह गया, १०० डिग्री रह गया, तो जो भी रह गया और जब जो भी बुखार है उसमें यह विभाग नहीं है कि शरीरके १०४ भाग सोचे जायें पैरोंसे लेकर सिर तक, उसमेंसे इस भागमें यह बुखार है, इस भागमें यह बात नहीं बनती किन्तु समूचे शरीरमें ही १०० डिग्री है तो वह १०४ डिग्री हैं तो सर्वत्र है, उस तापके भेद हैं वह डिग्री। और, यहाँ यद्यपि कोई ९६ डिग्री तकका बुखार पहिचानमें ला सकता है और कोई सोचे कि ९६ डिग्री बुखारमें ९६ अंश हैं तो एक डिग्री डिग्रीका बताओ। तो कोई बता नहीं सकता, लेकिन एक अंश बुखार न हो तो वह ९६ डिग्री बुखार आ नहीं सकता। तो पदार्थोंमें जघन्य गुणांश हम नहीं बता सकते, लेकिन होता है अवश्य। तो जब उनके समुदायमें बड़ी डिग्रियोंके गुणांश हो पाते हैं। तो जो हीनाधिकतारूप अंश है सो ही गुणांश हो सकेगा। इसी बातको दूसरे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्तमें बताते हैं।

अथवा ज्ञानं यावज्जीवस्यैको गुणोप्यखण्डोपि।
सर्वजघन्यनिरंशच्छेदैरिव खण्डितोप्यनेकः स्यात्॥ ५५॥

जीवके ज्ञान गुणके अंशोंका कथन–जैसे जीवका ज्ञान गुण है सो वह गुण यद्यपि एक है और अखण्ड भी है तो भी सबसे जघन्य अंशके भेदसे वह खण्डित होता हुआ अनेक प्रतीत हो जाता है। जैसे यहाँ मनुष्योंमें देखा जाता कि किसीका ज्ञान विशेष है, किसीका कम है, किसीका अल्प है, किसीका अतिअल्प है। तो जैसे उसमें छेदोंकी कल्पना है और कहते भी हैं कि उसका ज्ञान इससे दूना है तो ऐसे ज्ञानको क्या किसीने गजोंसे नापा है या किसी बर्तनसे नापा है? तो वह तर्तमतासे नापा हुआ है, अंशकल्पना करके समझा गया है। सूक्ष्म निगोदलब्ध पर्याप्तक जीवका अक्षरके अनन्तवें भाग बराबर जघन्य ज्ञान होता है। वैसे इन निगोदियोंके अनेक प्रकारके ज्ञान होते हैं मगर किसीके जघन्य ज्ञान अगर रहे तो वह अक्षरके अनन्तवें भाग है और जो ज्ञान वहाँ प्रकट है उसमें भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। जो कमसे कम ज्ञान प्रकट हुआ है सूक्ष्म निगोदलब्ध पर्याप्तकका, वह यद्यपि सब जीवोंके मुकाबलेमें जघन्य ज्ञान है, लेकिन उस ज्ञानमें भी अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद हैं, अब उनमेंसे कोई जानना चाहे कि एक अविभाग प्रतिच्छेदकी बात समझाओ या असंख्यात अविभाग प्रतिच्छेदकी बात समझाओ तो नहीं बताया जा सकता। अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं उसमें, इतनेपर भी स्पष्ट विदित नहीं होता कि कैसा जघन्य ज्ञान है उस निगोदका? तो वह है जघन्य ज्ञान और उस निगोद पर्यायमें ही अन्य अनेक निगोदों की उत्तरोत्तर अवस्थामें थोड़े थोडे ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। तब उससे अधिक ऐसे सूक्ष्म निगोदोंके ज्ञानकी वृद्धि की है, उससे अधिक अन्य स्थावरोंकी ज्ञानांशवृद्धि है। उससे अधिक दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी और उससे अधिक संज्ञी पञ्चेन्द्रियकी ज्ञानांशवृद्धि है उनमें भी श्रुतकेवली की, अवधि, मनः पर्यय ज्ञान वालेकी और सबसे अधिक केवलज्ञानीकी ज्ञानांशवृद्धि है। तो जघन्य ज्ञान है सूक्षम निगोद लब्ध्य पर्यायका और उत्कृष्ट ज्ञान है केवलज्ञानका। केवलज्ञानमें चराचर जगतकी प्रत्येक द्रव्यपर्यायें एक साथ स्पष्टतया ज्ञानमें आती हैं।

वृद्धिके प्रसङ्गमें वृद्धियोग्य अंशोंसे अविभागी अंशकी गणना–अब इन सब ज्ञानोंकी डिग्रियोंके विस्तारमें वस्तुतः एक अविभाग प्रतिच्छेद नहीं बढता। जैसे सूक्षम निगोदका जो जघन्य ज्ञान है उससे ज्ञानका एक अविभाग प्रतिच्छेद न बढ़ेगा तो अनेक अविभाग प्रतिच्छेद कमसे कम लेकिन इस समय जानकारी के लिए यह समझें कि कमसे कम जितना बढता है उतना एक अंश है। यद्यपि वह भी एक अंश नहीं है, उसमें भी अनेक अविभाग प्रतिच्छेद हैं मगर एक अविभाग प्रति-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

च्छेद तो बढता ही नहीं है। जब बढेंगे तो अनेक बढेंगे। लेकिन कमसे कम जो बढने की चीज है उसे एक अंश समझ लीजिए, क्योंकि व्यवहारमें समझमें तो हम उस ही एक अंशको ले सकेंगे जिस अंशसे कमसे कम बृद्धि होती है। तो यहां ज्ञानकी वृद्धिमें जघन्न बृद्धिका नाम एक अंश है। वैसे तो जो अविभाग प्रतिच्छेद अंश है सो नहीं कह सकते। तो एक ज्ञान गुणमें जघन्न अवस्थासे लेकर कहां तक वृद्धि होती है वह विवेकी पुरुष अनुभव कर सकते हैं। बस इसी ढङ्गसे होने वाला यह बृद्धिभेद यह बात प्रसिद्ध करता है कि ज्ञान गुणके अंश बहुत होते हैं और वे ही हीनाधिक रूपसे प्रतीत होते हैं। तो जैसे ज्ञानगुणके अंश अनेक हैं इसी तरह प्रत्येक गुणके अंश अनंत हैं। इसीका नाम अविभागी प्रतिच्छेद है। इसीको गुणांश कहते हैं। इस अविभाग प्रतिच्छेदमें जो एक अंश है वह गुणांश है। यों गुणांशमें क्रमविस्तारसे न होगा किन्तु हीनाधिकताके रूपमें होगा। उसी क्रमको और स्पष्ट समझानेके लिए कहते हैं।

देशच्छेदो हि यथा न तथा छेदो भवेद्गुणांशस्य।
विष्कंभस्य विभागात्स्थूलो देशस्तथा न गुणभागः॥ ५६ ॥

विस्तारच्छेदसे देशांशकी तथा तारतम्यसे गुणांशकी प्रसिद्धि—जिस तरहसे देशके अंश होते हैं उस तरह गुणोंके अंश नहीं होते। देशके अंश तो विस्तार चौड़ाईके क्रमसे होते हैं। कोई पदार्थ एक लम्बे चौड़े मोटे विस्तारमें है उसके अंश बनेंगे तो विस्तारमें संक्षेपमें बनेंगे। पर इस तरह गुणोंके अंश न बनेंगे, क्योंकि गुणोंमें विस्तार नहीं है। गुण तो जो ही गुण जिस एक प्रदेशमें है वह ही गुण अन्य समस्त प्रदेशोंमें है। अगर प्रदेशके भेदसे गुणोंमें भेद हो जाय तो एक द्रव्य वह न मिलेगा। फिर तो जितने प्रदेश हैं उतने वे द्रव्य कहलायेंगे। तो गुण अंश तरतमताके रूपसे कहा गया है। तो गुणोंका क्षेत्र याने गुणोंके अविभागी अंश एक ज्ञानमें आते हैं पर विस्तारमें नापनेमें नहीं आ सकते, ज्ञानमें ऐसी महिमा है कि वस्तुके सर्वतोमुखी रहस्यको जाननेमें यह कुशल बन सकता है। ज्ञानमें जो जाननेकी बात आती है, परमार्थतः ज्ञानमें प्रकृति ऐसी है, ज्ञानका शील ही ऐसा है कि जो सत् है वह ज्ञानमें आयगा। ज्ञानका ऐसा शील जिनकी समझमें नहीं आता, उन्हें इस बातपर अचम्भा होता है कि भगवान एक ही समयमें तीन लोक तीन कालकी समस्त बातें एक साथ कैसे जान लेते हैं? जिनकी दृष्टिमें जाननेका उद्यम समाया हुआ है, जैसे कि यहाँ इंद्रिय प्रयोग करके जाननेका उद्यम किया करते हैं इसी प्रकारके उद्यमकी बात समाई हुई है, उनका आचरण होता है लेकिन एक ऐसा तत्त्व है कि उसमें ऐसा ही स्वभाव पड़ा हुआ है कि यहाँ ही रहकर बिना ही उद्यम किए अनायास ही जो कुछ भी हो वह ज्ञानमें आ जायगा। ज्ञानकी यह परिणति बृत्ति एक अलौकिक बृत्ति है, इसको पदार्थके सम्मुख होनेकी जरूरत नहीं और पदार्थोंके नियमित होनेकी जरूरत नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब ज्ञानावरणका आवरण पड़ा है और विकार भावोंके लगावके कारण यह ज्ञान कमजोर बन गया है, ऐसी स्थितियोंमें भले ही इन इंद्रियोंके द्वारा ज्ञानका उपयोग होता है उस समय अभिमुख पदार्थका ज्ञान होता है, नियमित पदार्थोंका ही ज्ञान होता है लेकिन अभिमुख और नियमित पदार्थोंका ज्ञान करनेका ज्ञानमें स्वभाव नहीं पड़ा हुआ है। ज्ञानका स्वभाव तो शाश्वत यही है कि जो भी सत् है वह ज्ञानमें आये। तो जहाँ ज्ञानावरणका पूर्ण क्षय हो जाता है वहाँ इस ज्ञानमें यह निर्बाध निसीम होता ही है कि जो सत् है वह ज्ञानमें आये। और, तब यह कहना पड़ेगा कि जो ज्ञानमें न आये वह सत् है ही नहीं। ज्ञानकी इस अलौकिक वृत्तिका चित्रण चित्तमें किया जाना कठिन है। प्रभुकी महिमा अब जानेंगे कि प्रभुका कितना बड़ा माहात्म्य है। प्रभुकी महिमा दो गुणोंके विकाससे जानी जाती है—ज्ञान और आनन्दसे। जिस ज्ञानगुण का विकास इतना अलौकिक है कि जिसका उदाहरण कहीं नहीं है। जो सत् है, जो सत् था, जो सत् होगा वह सब ज्ञानमें है। और यों कहा जा सकता है फिर कि जो प्रभुके ज्ञानमें नहीं, वह कहीं है ही नहीं। इसी तरह आनन्दकी बात देखो! प्रभुका आनन्द ऐसा निस्तरङ्ग, निराकुल, शान्त, धीर, शाश्वत, गम्भीर है कि जहाँ क्षोभका अवसर नहीं, किसी खण्डका अवसर नहीं, अनन्त स्वाधीन शाश्वत आनन्द है जिससे वह सदा अव्याबाद रहता है। तो ज्ञान और आनन्द गुणके ये सब विकास अंश तरतमतारूपसे जाने जाते हैं, विस्ताररूपसे नहीं समझे जाते।

क्रमोपदेशश्चायंप्रवाहरूपो गुणः स्वभावेन।
अर्थच्छेदेन पुनश्छेत्तव्योपि च तदर्धच्छेदेन॥ ५७॥
एवं भूयो भूयस्तदर्धच्छेदैस्तदर्धच्छेदैश्च।
यावच्छेत्तुमशक्यो यः कोपि निरंशको गुणांशः स्यात्॥ ५८॥
तेन गुणांशेन पुनर्गणिता सर्वे भवन्त्यनन्तास्ते।
तेषामात्मा गुण इति नहि ते गुणतः पृथक्त्वसत्ताकाः॥ ५९॥

अविभागी अंशके परिज्ञानके लिये अर्धच्छेदोंकी पद्धतिका विवरण—गुणका अंश बतानेमें क्रमपूर्वक कुछ कथन करते हैं, गुण स्वभावसे प्रवाहरूप है. अर्थात् जैसे द्रव्य शाश्वत् है, त्रिकालवर्ती है, अनादिसे अनन्त तक उसका प्रवाह है इसी प्रकार गुणका भी द्रव्यके साथ प्रवाह है। अर्थात् गुण अनादि अनन्त है, ध्रुव है, त्रिकालवर्ती है, अब उस गुणमें गुणोंकी हीनाधिकतासे अर्द्धछेद करना चाहिए। जैसे दो पुरुषोंमें हीनाधिकता जानी जाती है कि इस पुरुषका ज्ञान इससे दुगुना है तो यह कहते हैं कि इससे उसका ज्ञान आधा है। लोक व्यवहारमें ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य पाये जाते हैं। और अनेक मनुष्योंके सम्बन्धमें ऐसा कहना बनाबर चलता है कि इस मनुष्यके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानसे इसका ज्ञान आधा है। तो गुणोंमें हीनाधिकताकी अपेक्षासे एक अर्द्धछेद हुआ। अब उस मनुष्यसे भी जिसका ज्ञान आधा है तो वहाँ भी अर्द्धछेद हुआ। उसका भी अर्द्धछेद हुआ। यों आधा आधा अंश कर करके अन्तिम जो निरंश अंश हुआ तो उस निरंश अंशको एक गुणांश कहते हैं। यह गुणांश गुणोंसे पृथक नहीं हैं, गुणस्वरूप ही है। वह गुण स्वयं किसरूपमें प्रकट है उसकी प्रकटता बतानेके लिए अंश कल्पना है। तो यों उन समस्त गुणांशोंका जो पिण्ड है उसका नाम गुण है। यह गुणांश गुण से भिन्न नहीं, किन्तु इन गुणांशोंका जो अखण्ड पिण्ड है वही गुण कहलाता है। गुण द्रव्यकी भांति ही सत् है, द्रव्यसे प्रथक सत् नहीं है। जैसे अभेद दृष्टिमें एक पिण्ड द्रव्यको देखा तो वहाँ वह सत् समझमें आया। तो जैसे भेद दृष्टिमें केवल एक गुण-मात्र देखा तो उस दृष्टिमें यह गुण भी सत्तात्मक हुआ, असत् नहीं है, जो है उसी की ही व्याख्या है। पर द्रव्य और गुणके मुकाबलेमें जब परखा गया तो द्रव्य तो सत् है और गुण सतंश है। यों उन गुणांशोंका जो अखण्ड पिण्ड है उसका गुण कहा गया है। यह गुणांश प्रदेश विस्तारके छेदकी भांति छिन्न नहीं होते किन्तु उनमें तरतमताके अंशोंसे उनका छेद होता है।

अपि चांशः पर्यायो भागो हारो विधा प्रकारश्च।
भेदश्छेदो भंगः शब्दाश्चैकार्थवाचका एते ॥ ६० ॥

पर्यायके पर्यायवाची शब्द—अब यहाँ पर्यायके नामवाची शब्द हैं—अंश, पर्याय, भाग, हार, विध, प्रकार, भेद, छेद, भंग, ये सब शब्द एक ही अर्थके कहने वाले हैं। इस अर्थके आधारसे यह जाना जायगा कि किस किस बुद्धिसे किए गए अन्शोंका नाम पर्याय है? प्रथम शब्द है अन्श। अन्शका अर्थ है किसी अखण्ड पिण्डका भेद करना। एक अखण्ड द्रव्य है, उसके शक्तिभेदसे अन्श किया, भेद किया, तो गुणका कथन भी पर्यायका कथन कहलाया और एक पर्यायमें जो कि एक समयमें एक द्रव्यकी है उस पर्यायमें नाना परिणमनोंका अन्श करके एक एक परिणमन ग्रहण करना इसका नाम है अन्श। तो यह अन्श ऊर्द्धसरूप पर्याय हुआ। पर्याय नाम है परिणमनका। जो परिणमन है उसे पर्याय कहते हैं। अथवा पर्याय यह एक विशेष शब्द है क्योंकि इस गाथामें पर्यायके नामवाची शब्द बताये जा रहे हैं। भाग-भाग करके जो हिस्सा हो उसे भाग कहते हैं। यह भाग गुणोंके रूपसे भी है। परिणमनके रूपसे भी है, तो यह भाग पर्याय कहलाता है। हार—एक अखण्ड पिण्डमें कुछ हरण कह लेना, कुछ निकाल कर कहना इसका नाम हार है। और उस पर्यायके जो प्रकार हैं वे विध कहलाते हैं। अर्थात् उस प्रकारका अर्थ है और उसकी जातिके अन्तर्गत ये सब अन्श हैं। प्रकार-उस जातिके जो प्रकार हैं, जितने प्रकारसे वे विस्तार हो सकते हैं वे प्रकार भी पर्याय कहलाते हैं—जैसे सम्यग्दर्शन इतने प्रकारका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, तो सम्यग्दर्शन एक द्रव्य स्थानीय हुआ और उसका जो प्रकार हुआ वह पर्याय स्थानीय है। मुकाबलेमें जो अभेदरूप है सो द्रव्य है और जो भेदरूप होता है सो पर्याय होती है। इसी प्रकार छेद भी है। एक अखण्ड पिण्डमें किसी भी अन्श दृष्टि द्वारा छेद करना सो छेद है और उसको तोड़ना सो भंग है। जैसे कि व्यवहार जोड़से भी होता और तोड़से भी होता। आत्मामें ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं इस प्रकारके तोड़का नाम व्यवहार है और आत्मामें कषाय आदिक हैं ऐसा जोड़ करनेका नाम भी व्यवहार है। तो यहाँ भंग शब्दसे एक तोड़का अर्थ लिया गया ये सब एक अर्थ के वाचक हैं।

सन्ति गुणांशा इति ये गुणपर्यायास्त एव नाम्नापि ।
अविरुद्धमेतदेव हि पर्यायाणामिहांश धर्मत्वात् ॥ ६१ ॥

गुणांशोंकी गुणपर्यायरूपताका कथन—जितने भी गुणांश हैं वे सब गुण पर्याय कहलाते हैं। यह बात बिल्कुल सिद्ध है और अंश स्वरूप ही पर्याय होती है ये अन्शके धर्म हैं पर्याय अर्थात् जिस किसी भी प्रकारसे एक अखण्ड वस्तुमें हिस्से करना इसका नाम पर्याय है। अब वे हिस्से चाहे एक शक्ति भेदरूप हों और चाहे गुणोंकी हीनाधिकतारूपसे हों, वे सब पर्यायें कहलाती हैं। यों उक्त गाथामें बताये गये अन्श पर्याय, भाग, हार आदिक, ये सब पर्यायके ही वाचक शब्द हैं।

गुणपर्यायाणामिह केचिन्नामान्तरं वदन्ति बुधाः ।
अर्थो गुण इति वा स्यादेकार्थादर्थपर्यया इति च ॥ ६२ ॥

अर्थ पर्यायके नामसे भी गुणपर्यायके उल्लेख होनेका संकेत—कितने ही बुद्धिमान पुरुष गुण पर्यायोंका एक दूसरा नाम भी कहते हैं, क्या ? अर्थ पर्याय। गुण और अर्थ दोनों ही एक वाच्यके वाचक शब्द हैं इस कारणसे गुण पर्यायका दूसरा नाम अर्थ पर्याय भी कह देते हैं। निरुक्ति अर्थसे देखा जाय तो गुणका अर्थ है गुण्यते भिद्यते इति गुणः। जो गुणित किया जाय, भेदा जाय उसे गुण कहते हैं। वस्तु अपने अखण्ड स्वरूपमें है, वह शाश्वत् एक स्वभाववान है उसका भेद स्वभाव भेदके रूपमें होता है, और यों उस एक स्वभावके पहिचाननेके लिए जो भिन्न भिन्न प्रकारके स्वभाव परखे जाते हैं, जिनका अभेद अखण्ड एक स्वभाव है बस उन सब भेदोंको गुण कहते हैं, यह तो है गुणशब्दका निरुक्ति अर्थ और अर्थका अर्थ है अर्थते निश्चीयते इति अर्थः। जो निश्चय किया जाय, जाना जाय उसे अर्थ कहते हैं। अर्थ शब्दमें गुण के भावकी बात सीधे रूपमें नहीं है, इस कारणसे यह रूढ़ शब्द है। निश्चयमें तो सब कुछ आता है फिर भी सिद्धान्तमें यहाँ अर्थको गुण शब्दसे कहा है, पर अनेक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रसंगोंमें अर्थको पदार्थ कहा गया है अथवा और व्यापक क्षेत्रमें चलिए तो अर्थको बताया गया है। जो द्रव्य गुण पर्यायमें अवस्थित हो सो अर्थ है। अर्थात् पर्याय गुण और द्रव्यसे भी व्यापकरूप है अर्थका। और, उस स्थितिमें अर्थ पर्याय होगी अगुरुलघुत्व-गुणकी हानि वृद्धिरूप। तो वाच्य तो जितना है सो है। अब उसे किस शब्दसे कहा जाय यह एक पूर्व पूर्व प्रयोगके अनुसार बात होती है। वहाँ गुणको अर्थ शब्दसे कहा गया है तो गुण पर्यायका अर्थ भी अर्थ पर्याय हुआ। यह गुण पर्यायका नामान्तर है। अब द्रव्य पर्यायका नामान्तर सुनो !

अपि चोद्दिष्टानामिह देशांशैर्द्रव्य पर्ययाणां हि ।
व्यञ्जनपर्याया इति केचिन्नामान्तरं वदन्ति बुधाः ॥ ६३ ॥

व्यञ्जन पर्यायके नामसे भी द्रव्य पर्यायके उल्लेख होनेका संकेत — कितने ही बुद्धिशाली पुरुष द्रव्यका दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय कहते हैं। प्रदेशत्व गुण के निमित्तसे होने वाली पर्याय अथवा प्रदेशत्व गुणके विकारको व्यञ्जन पर्याय कहते हैं। जिसमें प्रदेशका विस्तार है, आकार है उससे सम्बन्धित जो परिणमन है वे सब व्यञ्जन पर्यायें कहलाती हैं। उक्त प्रसंगमें देश देशांश, गुण गुणांश, कहा गया था। देशका अर्थ है देशके अन्स। देश मायने द्रव्य अर्थात् द्रव्यके अन्श अर्थात् उन प्रदेशोंके द्वारा द्रव्य पर्यायका वर्णन किया गया था। उन ही द्रव्य पर्यायोंको व्यञ्जन पर्याय नामसे अनेक बुद्धिमान पुरुष कहते हैं, द्रव्य पर्यायमें जैसे समझिये जीवकी द्रव्य पर्यायें नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध, इन ५ रूपोंमें जीवकी द्रव्य पर्यायें प्रकट होती हैं। पुद्गलकी पर्यायोंमें शब्द बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, भेद अन्धकार, छाया, प्रकाश, आदिक व्यञ्जन पर्यायें प्रकट होती हैं। अमूर्त द्रव्योंकी व्यञ्जन पर्यायें प्रत्यक्ष गोचर नहीं है, वचन गोचर पदार्थोंके है। तो पदार्थोंके प्रदेशके आकार आदिकसे सम्बन्धित जो परिणमन है वह द्रव्य पर्याय कहलाती है। उन्हींका नाम व्यञ्जन पर्याय कहलाती हैं। उन्हींका नाम व्यञ्जन पर्याय है। व्यञ्जन पर्यायके सम्बन्धमें भी एक अभिमत यह है कि जितनी पर्यायें प्रकट हो सकती हैं वे तो व्यञ्जन पर्यायें हैं। चाहे वह गुण पर्याय हो अथवा द्रव्य पर्याय हो वे सब व्यञ्जन पर्यायें हैं, और, पदार्थमें साधारण अगुरुलत्व गुणके द्वारा जो निरन्त षड् गुण हानि वृद्धि रूप परिणमन चलते रहते हैं वे अर्थ पर्यायें हैं। वाच्य तो ये सब हैं। उनको कहने वाले शब्द एक पूर्व पूर्व प्रकारके अनुसार बनाये जाते हैं, कहे जाते हैं। यहाँपर जितने भी व्यक्त होने वाले परिणमम हैं वहाँ भी उन्हें व्यञ्जन पर्याय कहा है। और, इस गाथामें द्रव्योंके प्रदेशत्व गुणके निमित्तसे जो परिणति आकार प्रकट होता है वे सब व्यञ्जन पर्यायें हैं।

ननु मोघमेतदुक्तं सर्वं पिष्टस्य पेषणन्यायात् ।
एकेनैव कृतं यत् स इति यथा वा तदंश इति वा चेत् ॥ ६४ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देश देशाँशमेंसे किसी एकके कथनसे ही कार्य चल जानेसे दोनोंके कथनको व्यर्थ बतानेकी आरेका—यहाँ शङ्काकार कहता है कि ऊपर अभी जितने भी कथन किए गए हैं वे सब पिष्टपेषणकी तरह हैं, पिसे हुएको ही पीसा गया है। अरे जब एक शब्दके कहनेसे काम चलता है तो दूसरेके कहनेकी क्या आवश्यकता है? देखिये ! एक द्रव्यको कहकर भी काम चलाया जा सकता है, अधिगम किया जा सकता है, सो द्रव्य ही कहना चाहिए। अथवा पर्यायके वर्णनसे भी वही काम चलता है तो पर्याय ही कह लीजिए ! अब द्रव्य और पर्यायको जुदा जुदा कहना निष्फल है। द्रव्य भिन्न हो, पर्याय भिन्न हो ऐसा भी तो नहीं है। इस कथनमें भी यहाँ किसीकी बात कहकर बोधका उद्यम पूरा करना चाहिए। उन्हें जुदा जुदा कहना व्यर्थ है। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्नैवं फलवत्त्वाद् द्रव्यादेशादवस्थितं वस्तु।
पर्यायादेशादिदमनवस्थितमिति प्रतीतत्त्वात् ॥ ६५ ॥

द्रव्यादेशसे नित्यत्व व पर्यायादेशसे अनित्यत्व प्रतीत होनेसे द्रव्य, पर्याय दोनोंके निरूपणकी सार्थकता—द्रव्य और पर्याय इन दोनोंमें से एकका ही निरूपण किया जाना चाहिए, यह शङ्का युक्त नहीं हैं क्योंकि द्रव्यका और पर्यायका दोनोंका निरूपण करना आवश्यक है। वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है, पर्याय दृष्टिसे अनित्य है, यह बात कोई कैसे समझे ? वस्तुकी नित्यानित्यात्मकताकी प्रतीति, उनमें उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपका ही परिचय, तो द्रव्य और पर्याय दोनोंके कथनसे ही हो सकेगा। द्रव्य और पर्याय दोनोंका वर्णन करना तो अति आवश्यक है, इसके बिना कुछ भी ज्ञानप्रकाश नहीं हो सकता। पर्यायोंके बोध किए बिना द्रव्यका बोध नहीं हो सकता। और द्रव्यका बोध किए बिना पर्यायका बोध नहीं हो सकता। वस्तु है और वह निरन्तर परिणमती रहती है। यह तो वस्तुकी खासियत ही है अन्यथा वह सत् न रह सकेगा। कोई पदार्थ परिणमे तो नहीं और रहे, ऐसा होता ही नहीं है। कोई पदार्थ ध्रुव तो रहे नहीं और उसकी अवस्थायें बनें, यह हो नहीं सकता। तो वस्तु चूंकि नित्यानित्यात्मक है उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है, तब उसका वर्णन केवल द्रव्यके कहनेसे न होगा अथवा केवल पर्यायके कहनेसे न होगा किन्तु द्रव्य और पर्याय दोनोंका ही निरूपण होनेपर यह मर्म जाना जा सकेगा।

द्रव्यादेश या पर्यायादेशके एकान्तमें वस्तुत्वकी निरूपताका दर्शन—जितने भी अनेक दर्शन हैं वे सब द्रव्य और पर्यायके किसी आधारपर बने हुए हैं और इसीमें कोई एकान्त हो जानेसे उनमें विपरीतपना आ जाता है। कुछ भी कथन किया जाय लोकव्यवहारमें वह भी द्रव्य पर्याय दृष्टिसे भरा हुआ होगा। लोकव्यवहार भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस अभेद और भेदकी पद्धतिके बिना बन नहीं सकता। परमार्थमें जितना भी तत्त्वों का अवबोध है, जितना भी आर्षनिरूपण है वह सब द्रव्यपर्यायसे व्याप्त है। यदि द्रव्य और पर्याय दोनोंका निरूपण न किया जाय तो वस्तुमें कथंचित् नित्यपना और कथंचित् अनित्यपनेकी सिद्धि नहीं हो सकती। वस्तुकी द्रव्य पर्याय स्वरूपता न जाननेसे कुछ दार्शनिक लोग किस अभिमतमें पहुंचते हैं कि तत्त्व तो कोई एक अनिर्वचनीय है, जिसे ब्रह्म शब्दसे कहा जाता है वह अपरिणामी है, उसका कोई व्यक्त रूप नहीं है। ऐसा मानकर तो समस्याका हल नहीं हो पाता। वहाँ एक परिणमन भेद अवश्य है कि फिर जो यह व्यक्त रूप दिख रहा है यह सब क्या है? किसका परिणमन है? तो वहाँ यह कल्पना करनी पड़ी कि यह सब प्रकृतिका परिणमन है। और, प्रकृतिके परिणमनमें भी तो आखिर उत्पाद व्यय ध्रौव्य जैसी स्थितिसे मनाई नहीं की जा सकती। एक प्रकृति प्रधान है वह ध्रुव है और उसके अहंकार स्वार्थ आदिक जो व्यक्तरूप हैं वे उत्पादव्यय वाले हैं। तो कितना भी बचा जाय, उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूपको माननेसे बचा नहीं जा सकता। एक उस ब्रह्मको ही यदि कुछ भी परिणमन न माना जाय, उसकी कोई व्यक्ति न समझी जाय तो उसका भी सत्त्व क्या रहेगा? तो वस्तु द्रव्य पर्यायरूप है अतएव द्रव्य और पर्याय दोनोंका ही निरूपण करना आवश्यक है। वहाँ यह शङ्का न करना कि केवल द्रव्यके निरूपणसे ही काम चल जायगा अथवा केवल पर्यायसे ही काम चल जायगा। पर्यायके एकान्तमें क्षणिकवाद बनता है जो युक्तिसिद्ध नहीं है और द्रव्यके एकान्तमें अपरिणामी अद्वैतवाद बनता है जो कि युक्त सिद्ध नहीं है। वस्तुका सही स्वरूप जाननेके लिए द्रव्य और पर्याय दोनों का अवगम और निरूपण आवश्यक है।

सयथा परिणामात्मा शुक्लादित्वादवस्थितश्च पटः।
अनवस्थितस्तदंशैस्तरतमरूपैर्गुणस्य शुक्लस्य ॥ ६६ ॥

एक वस्तुमें अवस्थितता व अनवस्थितताका दृष्टान्त—पदार्थ नित्य और अनित्य किस प्रकार होता है उसका इस गाथामें वर्णन है, यह तो पहिले बता ही दिया था कि द्रव्यकी अपेक्षासे वस्तु नित्य है और पर्यायकी अपेक्षासे वस्तु अनित्य है, इसी कारण द्रव्य और पर्याय दोनोंका कहना आवश्यक है। तो उस ही नित्यता और अनित्यताको समझानेके लिए एक यहाँ दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे वस्त्र सफेदी आदिक अनन्त गुणोंका समूह है और वह वस्त्र जो कि गुण पिण्ड है किन्तु अवस्थाओं को प्रतिसमय बदलता है और अवस्थाओंके बदलनेपर भी गुणोंका नाश कभी नहीं होता। तब नित्य और अनित्य दोनों बातें सिद्ध हो गई ना? और, इसमें भी गुण पर्यायकी नजर रखें तो शुक्ल आदिक गुणोंमें, तर्तमता आदिक रूप चलते ही हैं, इस अपेक्षासे भी अनित्य है। तो अनित्यता इन गुणांशोंमें यों जानी गयी कि वहाँ जो एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अंश दूसरे अंशसे भिन्न नहीं है तो वह अंशमात्र वस्तु रह जायगी, अनेक अंश न कहे जायेंगे, जैसे किसी आदमीको बुखार है १०० डिग्री तो १०० डिग्रीमें अंश १०० कल्पित हैं। अब उन अंशोंमें यह भेद तो समझना ही होगा कि प्रत्येक अंश अपने अपमेंरूप रख रहे हैं और एक अंश अन्य अंशोंसे भिन्न है। यदि ऐसी एक दृष्टिमें भिन्नता न मानी जाय अंशोंमें तो उनका समूह मिलकर भी एक ही अंश रहेगा, वहाँ डिग्रियाँ सब खतम हो जायेंगी। वस्तुके स्वरूपमें अभेद और भेद किस तरह खचित हैं कि अभेद होनेपर भी भेद बतानेकी बात सत्य है और भेद स्वीकार किए बिना वह अखण्ड अभेद नहीं हो पाती। और यों व्यवहारमें समझनेके लिए उनमें भेद है, इतने पर भी भेद ही नहीं है, अभेद है तब ये भेद बनाये जा रहें हैं। तो एक गुण जो शाश्वत है उसे गुणांशकी तर्तमत बोलते हैं, इस दृष्टिसे वह अनित्य है और उन हीनाधिकतामें आये हुए अंश या जितने भी जब जो अंश हैं वहाँ एक अंशसे दूसरा अंश भिन्न है, सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते। यद्यपि द्रव्यमें भेदमें अभिन्न है, उनकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है लेकिन लक्षणसे और अपने अंशत्वसे भी वे भिन्न न हों तो फिर अंश ही क्या रहेंगे ? तो जैसे वह वस्त्र क्या है ? गुणोंका पिण्ड है। सफेदी है या अन्य जो भी गुण हैं उन गुणोंका वह समूह है। और वस्त्र बदलता है तो वह गुण भी अपनी तर्तमतामें बदलता है, तो बदल कर भी मिटता नहीं है और वहीं रहकर भी बदलती रहती है, यह बात वहाँ पायी जाती है, इससे सिद्ध है कि वस्तु कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। इस ही नित्यता और अनित्यताको समझानेके लिए एक उदाहरण दे रहे हैं।

अपि चात्मा परिणामी ज्ञानगुणत्वावस्थितोपि यथा।
अनवस्थितस्तदंशैस्तरतमरूपैर्गुणस्य बोधस्य ॥ ६७ ॥

ज्ञाता पदार्थमें अवस्थितपने व अनवस्थितपनेका निर्देशन— आत्मा अवस्थित है, सदाकाल रहता है फिर भी वह आत्मा अपरिणामी है और आत्मामें ज्ञानगुण सदा रहता है उस दृष्टिसे आत्मा नित्य है, लेकिन उस ज्ञानगुणके निमित्तसे उनके तर्तमोंकी हीनाधिकताके व्यक्त होनेसे आत्माका प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है याने कभी ज्ञानगुणके अधिक अंश प्रकट रहते हैं कभी कम। संसार अवस्थामें ऐसी हीनाधिकता होती रहती है। उस हीनाधिकताके कारण आत्मा कथंचित् अनित्य भी है। ऐसे अंशोंका हीनाधिक होना यह विकृत पदार्थोंमें जल्दी पहिचानमें आता है। लेकिन जो पदार्थ स्वभाव परिणमनमें हैं, शुद्ध हैं उनमें भी तर्तमता का परिणमन तो है अर्थात् अगुलंघु गुणकी वृद्धि है, लेकिन वह उतने अगुरुलघु गुण की वृद्धि होनेपर भी उनका जो व्यक्त परिणमन है उस परिणमनमें विपरीतता नहीं आ पाती और न ऐसा परिवर्तन होता है कि जिसमें पहिली पर्यायकी अपेक्षा दूसरी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायमें भिन्नता स्पष्ट की जा सके। तो पदार्थ गुणोंका पिण्ड है। गुण शाश्वत है और गुणोंमें तर्तमता होती है, उस हीनाधिकताकी व्यक्तिके कारण गुणांश अनित्य है, अर्थात् पर्याय दृष्टिसे वस्तु अनित्य है और गुण शाश्वत है इस दृष्टिसे अर्थात् पदार्थ द्रव्य दृष्टिसे नित्य है। अब यहाँ शङ्काकार आशङ्का करता है –

यदि पुनरेवं न भवति भवति निरंश गुणांशवद्द्रव्यम्।
यदि वा कीलकवदिदं भवति न परिणामि वा भवेत् क्षणिकम्।६८।

अथचेदिदमाकूतं भवन्त्वनन्ता निरंशका अंशाः।
तेषामपि परिणामो भवतु समांशो न तरतमांशः स्यात्॥ ६९॥

द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था न मानकर शङ्काकारके निरंश द्रव्य, अपरिणामी, क्षणिक व समांश सम्बन्धी चार विकल्प—शङ्काकार कहता है कि कि देश देशांश, गुण गुणांशकी और उनमें नित्यत्वकी जो कल्पना की गई है ऐसा यदि न माना जाय अथवा यों चार विकल्पोंमें उनको समझा जाय तो इसमें क्या हानि है ? पहिली बात तो यह है कि गुणांशकी तरह द्रव्यको निरंश माना जाय। जैसे कि गुणांश एक अविभागी अंशका नाम है, यों ही द्रव्यसे भी एक गुणांशके ढङ्गका निरंश माना जावे। तो फिर उसमें गुण गुणांशकी कल्पनाका श्रम न करना पड़ेगा। द्रव्य है और वह निरंश है। दूसरी बात उस निरंश द्रव्यको परिणामी न माना जाय, जैसे कि एक कूटस्थ ज्योंका त्यों वहीं गड़ा रहता है उसी तरह इस निरंश द्रव्यको भी वैसा का वैसा ही अपरिणामी माना जाय। लोहेकी दुकानपर भत्सनाके पास एक लोहेका बहुत मोटा कीला गड़ा रहता है और जैसे लोहेके टुकडेको पसारना है अथवा उसकी कोई चीज बनाना है तो वह उस भत्सनामें गरम करके उस टुकडेको सनसीसे पकड़कर उस कूटस्थपर रखकर हथौडेसे पीटते हैं और उस सम्बन्धमें देखिये, चार लोहे हुए—एक तो गड़ा हुआ, दूसरा वह टुकड़ा जो गर्म है, जिसकी कोई चीज बनाई जारही है। तीसरी—सनसी जिससे वह टुकड़ा पकड़ा गया। चौथा—हथौड़ा। तो ४ लोहोंमें ३ लोहे तो निरन्तर अदल बदल करते रहते हैं। पीटने वाला हथौड़ा भी कितना कार्य कर रहा है, सड़ासी भी कितना कार्य करती है, वह टुकड़ा भी कितनी क्रिया कर रहा है लेकिन जिस लोहेपर ये सब पीटे जा रहे हैं वह लोहा तो जहांका तहां गड़ा है, उसमें क्रिया नहीं होती। तो ऐसे ही उस कूटस्थकी तरह निरंश द्रव्यको भी अपरिणामी माना जाय, अदल बदल न करे, न कोई क्रिया है अथवा तीसरी बात यों स्वीकार कर लीजिये कि वह द्रव्य सर्वथा ही क्षणिक हैं। प्रथम समयमें स्वरूप लाभ लिया, द्वितीय समयमें वह नष्ट हो गया अथवा चौथी बात यह मान लीजिए कि उस द्रव्यके अनन्त निरंश अंश हैं और फिर उन निरंश अंशोंका बराबर समान परिणमन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। तर्तमता और हीनाधिकताकी क्या बात है ? यों चार प्रकारोंमें पदार्थको माना जाय तो क्या दोष है ? ऐसी शङ्काकारकी शङ्का है।

एतत्पक्षचतुष्टयमपि दुष्टं दृष्टाबाधिततत्वाच्च ।
तत्साधकप्रमाणाभावादिह सोप्यदृष्टान्तात् ॥ ७० ॥

शङ्काकारके चारों विकल्पोंमें निरंशद्रव्य व अपरिणामित्व इन दो विकल्पोंकी दूषितताका वर्णन—शङ्काकारने जो चार विकल्प रखे हैं वे चारों ही विकल्प दोषसहित हैं। उनमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही बाधा आती है। न तो उन विकल्पों का कोई साधक प्रमाण है, न उनकी सिद्धिमें कोई दृष्टान्त है इसलिए भी वह विकल्प दूषित है। शङ्काकारका प्रथम विकल्प था कि द्रव्यको गुणांशकी तरह माना जाय। जैसे गुणांश गुणकी हीनाधिकताका अविभागी अंश है तो गुणोंकी हीनाधिकताका अविभागी अंशमात्र ही द्रव्य क्यों न कहा जाय ? इस विकल्पकी सिद्धि यों नहीं है कि गुणोंका परिणमन फिर एक देशमें ही होगा। याने किसीं भी गुणका कार्य सम्पूर्ण वस्तुमें नहीं हो सकता। क्योंकि अब द्रव्यको मान लिया गया गुणोंकी तर्तमता एक अविभागी अंशमात्र तब गुणका परिणमन कहाँ रहा ? तो सम्पूर्ण वस्तुमें गुण न सम्भव होगा इस कारण द्रव्यको गुणांशकी तरह निरंश नहीं माना जा सकता। दूसरा विकल्प शङ्काकारका था कि उस निरंश द्रव्यको परिणामी न मानकर कूटस्थ नित्य ही माना जाय सो इस सम्बन्धमें विचार करिये कि यदि उस द्रव्यको कूटस्थ नित्य माना जाता है तब इसका अर्थ है कि उसमें कोई परिणति कोई क्रिया न होगी। और जब परिणति और क्रिया कुछ भी न होगी तो पहिली बात तो यह है कि उसका सत्त्व ही नहीं ठहर सकता। सत्त्वका फिर मतलब क्या है ? दूसरी बात यह है कि जब क्रिया नहीं होती तो पुण्यफल, पापफल, बंध मोक्ष आदिककी कुछ भी व्यवस्था नहीं बन सकती। यदि द्रव्यको एकान्ततः नित्य ही स्वीकार किया जाय तो न कोई उसमें क्रिया हुई तो कारकपनेकी बात ही न रही। फिर तो वस्तुतः एक परमाणु भी क्या? उसका कोई फल भी न रहेगा। मोक्षके यत्नकी बात ही क्या, लोक व्यवहार भी क्या ? सर्व शून्य हो जायगा। तो यह दूसरा विकल्प भी युक्तिसंगत नहीं है कि उस द्रव्यको सर्वथा कूटस्थ नित्य मान लिया जाय।

निरंश द्रव्य और उसको क्षणिक माननेके तृतीय विकल्पकी दूषितता—शङ्काकारका तीसरा विकल्प था कि उस द्रव्यको सर्वथा क्षणिक माननेमें प्रत्यभिज्ञा नहीं हो सकती अर्थात् यह वही है जिसको पहिले देखा था आदिक रूपमें जो संकलनात्मक ज्ञान होता है वह न हो सकेगा। और फिर वस्तुको क्षणिक माननेपर फिर धर्ममार्गका लोप हो जायगा। पुनर्जन्म परलोक आदिक फिर कुछ न ठहरगे। तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसके लिये ये धार्मिक कृत्य किए जा रहे हैं और लोकव्यवहार भी किस आधारपर किया जा रहा है ? तब वस्तुमें सर्वथा क्षणिकता ही है, वहाँ किसी भी तरह ध्रुवता स्वीकार ही नहीं है तो किसका लेन-देन ? कौन सा कार्य करना ? संस्कार कुसंस्कार कहाँ ? ये सब बातें व्यवहारकी भी समाप्त हो जायेंगी। कार्य ही न किया जासकेगा। तो फलकी बात तो असम्भव ही है। पदार्थको सर्वथा क्षणिक नहीं माना जा सकता। यद्यपि ये सब विषय स्वतंत्र हैं, नित्य एकान्त माननेमें क्या दोष है ? क्षणिक एकान्त माननेमें क्या दोष है ? फिर भी प्रसङ्गका संक्षेपमें यह समाधान कर लेना चाहिए कि वस्तुको सर्वथा नित्य या सर्वथा अनित्य माननेमें न तो धार्मिक व्यवहार रहेगा और न लोकव्यवहार रहेगा। सर्वथा माननेमें कार्यकारण भाव भी नहीं बन सकता। कौन किसका कार्य है ? किसका निमित्त है ? क्या व्यवस्था होगी ? जब क्षणभरको पदार्थ आया और स्वरूप लाभ करके पदार्थ नष्ट होगया तो फिर उसमें क्या व्यवहार रहा ? इस कारण तीसरा विकल्प भी शङ्काकारका अयुक्त है।

अनन्त निरंश अंशोंको समांश माननेके चतुर्थ विकल्पकी दूषितता— शङ्काकारके अब चौथे विकल्पकी बात सुनो ! चौथा विकल्प यह था कि उस द्रव्यके अनन्त निरंश मान लिए जायें और उन प्रत्येक अंशोंका समानरूपसे परिणमन मान लिया जाय। तरतम रूपसे परिणमन न माना जाय तो इसमें आपत्ति क्या है ? शङ्काकारका यह चौथा विकल्प तो उठा कि पहिले यह बताया गया था कि पदार्थ कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है। गुणकी अपेक्षासे तो पदार्थ नित्य है और गुणांशकी अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है। जैसे कि जीव सदा ज्ञानगुणमय रहता है उस दृष्टिसे जीव नित्य है, पर जीवमें ज्ञानगुणके अंश जो हीनाधिकतारूप प्रकट होते रहते हैं, पहिले ज्ञान थोड़ा था, अब ज्ञान दुगना हो गया, अब तिगुना हो गया। उसमें जो हीनाधिकताके अंश व्यक्त होते हैं उसके कारण वह जीव अनित्य है। अभी इस अंश-मय था, अब इस अंशमय हो गया। ये विभिन्नतायें जो दीखती हैं ये अनित्यताको सूचित करती हैं। इस बातपर शङ्काकारका चौथा विकल्प था कि हीनाधिक अंशोंसे द्रव्यकी अनित्यता क्यों सिद्ध कर रहे हो ? वे प्रत्येक अंश स्वतन्त्र रहें और फिर उन्हें तर्तमरूपसे नहीं माना। जो जैसा है सो है अथवा रहा सब अंश समान, ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? यह शङ्काकारका चौथा विकल्प था। उस विकल्पकी अयुक्तता भी देखिये ! यदि निरंश अंश मान कर उनके समान परिणमन माने जायें, तर्तमरूपसे न माने जायें तो अर्थ यह होगा कि द्रव्य सदा एक साथ है। अब उस द्रव्यमें अवस्थाका भेद नहीं बन सकता, पर अवस्थाभेद तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। उसे कोई मना नहीं कर सकता इस कारण यह चौथा विकल्प भी युक्त नहीं है। ये सब बातें एक द्रव्यमें घटितकी जा रही हैं और द्रव्यसे सम्बन्धित हैं इस कारण अब द्रव्यका ही स्वरूप कह रहे हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्रव्यत्वं किन्नामः पृष्टश्चेतीह केनचित् सूरिः ।
प्राह प्रमाणसुनयैरधिगतमिव लक्षणं तस्य ॥७१॥

द्रव्यके लक्षणकी पृच्छना–किसी जिज्ञासुने यह जिज्ञासा करके कि आखिर द्रव्य नाम किसका है और द्रव्यका यथार्थ लक्षण क्या है ? प्रश्न किया कि द्रव्यत्व नाम है किसका ? द्रव्य क्या पदार्थ है ? और द्रव्यपनेका मतलब क्या है ? ऐसा प्रश्न किए जानेपर आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि देखिये ! जो प्रमाण और सुनयसे अच्छी तरह जाना हुआ लक्षण है वह द्रव्यका बताया जायगा। उसे ध्यान पूर्वक सुनो ! लक्षण वही सही होता है जो प्रमाण और सुनयसे सुनिश्चित है। पदार्थकी पहिचान लक्षणसे होती है। सो लोग भी किसी पदार्थका परिचय करनेके लिए कोई चिन्ह ही बताया करते हैं। जिसका ऐसा चिन्ह पाया जाय वह अमुक पदार्थ है, तो पकार्थका द्रव्यका लक्षण कहा जायगा। द्रव्यका पहिचान बताया जायगा। वह पहिचान यदि प्रमाणसे प्रमाणित है और सुनयसे सम्मत है, किसी बाधक प्रमाणसे बाधित नहीं है तो वह लक्षण लक्ष्यका निश्चय करानेमें समर्थ होता है। ऐसे ही लक्षणको अब कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यं लक्षणमेतत्सुसिद्धमविरुद्धम् ।
गुणपर्ययसमुदायो द्रव्यं पुनरस्य भवति वाक्यार्थः ॥ ७२ ॥

द्रव्यका प्रथम लक्षण "गुणपर्ययवद् द्रव्यम्"–द्रव्यका सीधा स्पष्ट सामान्य लक्षण है गुणपर्ययवत् द्रव्य जिसमें गुण पर्याय पाये जायें वह द्रव्य है। यह लक्षण प्रमाणसे सिद्ध है और किसी बाधक प्रमाणसे बाधित नहीं है। गुणपर्ययवत् द्रव्यं। इसमें शब्द इतना है गुण पर्ययवत् द्रव्यं। द्रव्य तो यहाँ विशेष्य है, जिसकी विशेषता अथवा लक्षण कहा जा रहा है। द्रव्य कैसा होता है ? तो उत्तर दिया गया गुणपर्याय वाला होता है। इसमें वत् शब्दका अर्थ 'वाला' है यह अव्यय नहीं है जिसका कि "तरह" अर्थ होता है। वत्के मायने तरह भी है, लेकिन यह वत् प्रत्यय जो प्रत्यय स्वामित्व अर्थमें लगता है, जैसे धनवान, ज्ञानवान यों ही यह वत् प्रत्यय लगा हुआ है, जिसका अर्थ तो सीधा यह विदित होता है कि गुणपर्याय वाला है, लेकिन इस कथन से यह न समझ लेना कि गुण कोई अलग चीज है और पर्याय कोई अलग चीज है। फिर उनका द्रव्यमें सम्बन्ध होता है। वह द्रव्यमें रहता है सो उन दोनोंका आधारभूत द्रव्य कोई अलग पदार्थ है ऐसा अनर्थ न करना।

द्रव्यका द्वितीय लक्षण "गुणपर्ययसमुदायः द्रव्यम्"—जो विवेकी जन हैं वे थोड़ेसे शब्दोंसे ही यथार्थ बात समझ लेते हैं। फिर भी कोई गुण पर्याय वाला

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्रव्य है, इस कथनसे इस आशयमें न पहुंच जायें कि गुण, अपर्याय और द्रव्य तीनों भिन्न-भिन्न चीज हैं और उन दोके सम्बन्धसे फिर द्रव्यको गुणपर्याय वाला कहा है। जैसे कोई कहे कि यह पुरुष घर कुटुम्ब वाला है तो उसमें तीन बातें प्रथक प्रथक विदित होती हैं कि घर अलग है, कुटुम्ब अलग है और यह पुरुष अलग है। यों ही कोई न समझले कि गुण और पर्याय अलग है और द्रव्य अलग है। इस अनर्थ अर्थका संदेह न रहे, इसके लिए आचार्य महाराज स्वयं ही दूसरी बात लक्षणके प्रसंगमें कह रहे हैं कि भाई उसका अर्थ यह है कि जो गुणपर्यायका समुदाय है सो द्रव्य है। वाला शब्द लगनेसे भिन्न चीज है, उनसे सहित द्रव्य है, यों न समझना, किन्तु द्रव्य गुण-पर्यायका समुदाय ही है। गुणपर्याय समुदाय: द्रव्यं। यह तो वाक्यार्थ है। पहिले यह बात स्पष्टरूपसे कह दी गई थी कि द्रव्य अनन्त गुणोंका अखण्ड पिण्ड ही है और वे गुण प्रतिसमय अपनी परिणति करते रहते हैं, अपनी अवस्था बदलते रहते हैं इस कारण त्रिकालवर्ती पर्यायोंको लिए हुए जो वे समस्त गुण हैं उनका ही अखण्ड पिण्ड द्रव्य कहलाता है। तो गुणपर्यायका समुदाय द्रव्य है, यह निष्कर्ष द्रव्यके लक्षणका समझना चाहिए।

गुण समुदायो द्रव्यं लक्षणमेतावताप्युशन्ति बुधाः।
समगुणपर्यायो वा द्रव्यं कैश्चिन्निरूप्यते वृद्धैः ॥ ७३ ॥

द्रव्यके तृतीय और चतुर्थ लक्षणको बतानेके लिये प्रथम द्वितीय लक्षण की भूमिका—कुछ अनुभवी पुरुष द्रव्यका ऐसा लक्षण कहते हैं कि समान रीतिसे होने वाली गुणोंकी पर्याय ही द्रव्य है। यहां तक द्रव्यके चार प्रकारके लक्षण कहे गए हैं। पहिला लक्षण तो कहा गया—गुण पर्याय वाला द्रव्य है। दूसरा लक्षण कहा गया-- गुण पर्यायका समूह द्रव्य है। तीसरा लक्षण कहा गया – गुण समुदायका नाम द्रव्य है और चौथा लक्षण कहा गया—गुण पर्यायके बराबर द्रव्य है। इन सब लक्षणोंमें क्रमशः अभेद दृष्टिका उत्तरोत्तर अवलम्बन किया गया है। प्रथम लक्षण एक साधारण रूपसे है कि गुण पर्याय वाला द्रव्य है। जिसमें गुण और पर्यायें हों, जिसके गुण और पर्यायें हों उसे द्रव्य कहते हैं। यह स्थूलतया समझका व्यवहार बनानेके किए प्रसिद्ध और उपयोगी लक्षण है, किन्तु जब यहाँ कोई शङ्का करने लगे कि तो क्या धनवानकी तरह जैसे कि धन अलग और धलवान पुरुष अलग है क्या द्रव्य अलग है, गुण पर्याय अलग है और फिर गुणपर्याय वाला होनेपर वह द्रव्य कहलाये। तो ऐसी भेद दृष्टिमें आकर होने वाली शङ्काको दूर करनेके लिए दूसरा लक्षण कहा गया है कि गुण पर्याय अलग हो और द्रव्य अलग हो, गुणपर्याय वालेको फिर द्रव्य कहा जाय ऐसा नहीं है, किन्तु गुण और पर्यायका जो समुदाय है वही द्रव्य है, याने गुणपर्याय द्रव्यसे पृथक नहीं है किन्तु गुणपर्यायका समुदाय ही द्रव्य है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तुस्वरूपके निकट व अनिकट पहुँचनेके लिए द्रव्यके तृतीय व चतुर्थ लक्षणका वर्णन—अब इस द्वितीय लक्षणमें भी भेददृष्टि करके यह शङ्का की जा सकती है कि गुण अलग कहा, पर्याय अलग कहा, तो गुण प्रकट हुआ, पर्याय प्रथक होगा और उन सबका समुदाय है सो द्रव्य कहलायेगा। सो भेददृष्टिमें शङ्का होनेपर यह तीसरा लक्षण समाधान कर देता है। द्रव्य गुणके समुदायका नाम है। जो गुण है वह प्रतिसमय अपना उत्पाद व्यय तो करेगा ही। अतएव पर्याय गुणोंसे अभिन्न है। उस अभिन्न पर्यायको अलग बताकर फिर उनका समुदाय बतानेमें शङ्का हुई थी। तो द्रव्यको गुणसे अभिन्न निरखकर फिर केवल गुणोंका समुदाय देखना यह पद्धति द्रव्य के परमार्थ लक्षणपर सुगमतया पहुंचा देती है। पर्याय गुणोंकी ही तो अवस्थायें हैं। कोई पर्याय गुणोंसे सर्वथा भिन्न पदार्थ नहीं है। जब गुणोंसे पर्याय भिन्न वस्तु न रही गुणोंकी ही अवस्था विशेष रही तब इस ढङ्गसे भी कोई समझे कि उन अवस्थाओंका समूह ही गुण है तो यों समझलो—जैसे गुण समुदाय द्रव्य है इसी प्रकार पर्यायसमूह द्रव्य है, ऐसा कहनेमें भी कोई अयुक्तता नहीं है। लेकिन पर्यायोंका समूह ही तो गुण है और द्रव्यकी ध्रुवता भी दृष्टिमें आये इसलिए गुण समुदाय द्रव्य है, ऐसे कथनसे द्रव्यकी समझमें एक विशेषता आती है। इस तरह द्रव्यके स्वरूपके अतिनिकट पहुँचने के लिए यह तृतीय लक्षण कहा गया है कि गुण समुदायको द्रव्य कहते हैं। अब इस तृतीय लक्षणको सुनकर भी चूंकि समुदाय समुदायी ये विकल्प हो गए, तो समुदायी हुए गुण और गुणोंका फिर एक समूह बना उसको द्रव्य कहा गया तो यहाँपर भी गुण और द्रव्यकी पृथक पृथक कल्पनायें जग सकती हैं। तब ऐसी आशङ्काके समाधान के लिए यह चौथा लक्षण बहुत ही समर्थ है। चौथा लक्षण कहा गया है—समगुणपर्याय: द्रव्यं अर्थात् समान गुण पर्यायको द्रव्य कहते हैं अर्थात् गुण और पर्याय द्रव्य बराबर हैं। यहाँ इसको विशेष अभेदरूपसे बताया गया है। इस चौथे लक्षणका क्या भावार्थ है? उसे गाथामें भी अलग बता रहे हैं।

अयमत्राभिप्रायो ये देशास्तद्गुणास्तदंशाश्च ।
एकालापेन समं द्रव्यं नाम्ना त एव निश्शेषम् ॥७४॥

देश, गुण और उसके अंशोंकी एक आलापसे द्रव्य संज्ञा—समगुणपर्याय द्रव्य है। इसका अभिप्राय यह है कि जो देश है और देशांश है अर्थात् गुण है एवं उन गुणोंके अंश हैं, इन तीनोंको ही एक शब्द द्वारा कहा जाय तो उसका नाम द्रव्य है अर्थात् द्रव्य इन तीन बातोंसे पृथक नहीं है। द्रव्यको समझनेके लिए इन तीन बातोंका भेद किया गया है—देश, देशांश, गुण और गुणांश। इसको गुण और पर्याय शब्दसे कहकर यह कहा गया कि चाहे गुण पर्याय कहलो अथवा द्रव्य कहलो, जितना द्रव्य पर्यायोंका विस्तार है जो कुछ गुण पर्यायोंका अस्तित्व है वही तो द्रव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। द्रव्यके गुण पर्यायसे इस अभिन्नताका कथन चतुर्थ लक्षणमें किया गया है। अब समझते हुए क्रमशः अभेदकी ओर आयें और आकर इस परिचय तक पहुंचें कि जो शाश्वत गुण जो कि निरन्तर अपनी अवस्थाओंको लिए हुए है बस यह सब ही पदार्थ है। यों द्रव्यका लक्षण चौथे लक्षणमें सब शङ्काओंका पूरा समाधान करता हुआ लक्षण बताया गया है।

नहि किञ्चित्सद्द्रव्यं केचित्सन्तो गुणाः प्रदेशाश्च।
केचित्सन्ति तदंशा द्रव्यं तत्सन्निपाताद्वा ॥ ७५ ॥

द्रव्य, गुण, प्रदेश और तदंशोंके पार्थक्यका तथा उनके सम्बन्धसे द्रव्य संज्ञा देनेका निराकरण—समगुण पर्याय द्रव्य है, ऐसा द्रव्यका लक्षण कहा जानेपर ये सब शङ्कायें समाप्त हो जाती हैं। जैसे कि कोई समझे कि द्रव्य कोई जुदा सत् पदार्थ है, गुण कोई जुदा सत् पदार्थ है, प्रदेश कोई अलग पदार्थ है और गुणोंके अंश कोई अलग तत्त्व हैं। और इन चारोंका मिलाप कर दिया जाय अथवा मिलाप हो जाय तो द्रव्य कहलाने लगता है, ऐसी शङ्का न रखनी चाहिए, क्योंकि देश, देशांश गुण गुणांश बराबर द्रव्य अर्थात् ये सब ही पदार्थ एक हैं और उस पदार्थको समझाने के लिए तीर्थ प्रवृत्तिके लिए यह भेद व्यवहार किया गया है। इस कारण द्रव्यमें ये देश देशांश गुण गुणांश जो बताये गए हैं वे कोई पृथक तत्त्व हों और उनका मेल हो, ऐसी बात न समझना! जो सिद्धान्त द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव ऐसे अलग-अलग पदार्थ मानते हैं और फिर इन पदार्थोंके भेद भी बताये हैं, उस पद्धतिमें आधार वास्तविक नहीं अपनाया जा सका। इसमें कितने ही पदार्थ तो आये नहीं और जो पदार्थ नहीं हैं उन्हें पदार्थ मान लिया गया है। यदि देश देशांश गुण गुणांश बराबर पदार्थ हैं इस आधारको अपनाते तो कहीं त्रुटि न हो सकती थी। जितने पदार्थ हैं वे सब आते और जो पदार्थ नहीं हैं किन्तु पदार्थकी विशेषता पदार्थ का परिचय समझानेके लिए भेदव्यवहार किया है वह पदार्थमें नहीं आता और वह पदार्थकी विशेषता कहलाती है। पदार्थ वह होता है जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य होता रहता है। जो प्रतिसमय बनता है, बिगड़ता है और बना रहता है उसको पदार्थ कहते है। द्रव्यके इस लक्षणका माध्यम लेकर यदि तत्त्वदर्शनमें बढा जाय तो भी कहीं त्रुटि नहीं हो सकती। तो यहाँ जो समगुणपर्याय लक्षण द्रव्यका कहा गया है उसमें सारी भूल मिट जाती है। गुण और पर्यायके बराबर द्रव्य कहलाते हैं। गुणपर्यायोंका अभेद पिण्ड द्रव्य है। इस लक्षणमें कोई ऐसा भी न समझे जैसा कि अगली गाथामें कहा है:

अथवापि यथा भित्तौ चित्रं द्रव्ये तथा प्रदेशाश्च।
सन्ति गुणाश्च तदंशाः समवायित्वात्तदाश्रयाद् द्रव्यम् ॥ ७६ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रदेश, गुण और तदंशोंके पार्थक्यका निषेध—जैसे भींटमें चित्र खिंचा रहता है तो वह चित्र भींटमें रहता है परन्तु भींट जुदा पदार्थ है और चित्र जुदा पदार्थ है। इसी प्रकार द्रव्यमें प्रदेश गुण और अंश रहते हैं। तो प्रदेश गुण और अंश ये जुदे पदार्थ हैं और द्रव्य जुदा पदार्थ है और प्रदेश गुणांश है जो कि द्रव्यमें रहता है। इन तीनोंका द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध होता है। तो उनका आश्रय जो कहलाये उसे द्रव्य कहते हैं। ऐसी शङ्का भी द्रव्यके लक्षणमें न करनी चाहिए। देश देशांश गुण गुणांश चार जुदे पदार्थ हों और उनका समूह द्रव्य कहलाता हो अथवा उन चारोंका मिलाप होनेपर उनका जो आश्रय हो वह द्रव्य कहलाता हो ऐसा नहीं है, किन्तु चारों ही अखण्ड रूपसे द्रव्य कहलाते हैं। परमार्थतत्त्व तो यह है कि जो पदार्थ है वह अवक्तव्य है। ज्ञानमें तो आ सकता है और आता ही है, लेकिन उसके संबंधमें कुछ कहा जाय तो यथार्थ बात किसी शब्दसे नहीं कही जा सकती। शब्द जो भी कहा जायगा वह उस पदार्थकी विशेषताको बताने वाला होगा, क्योंकि शब्द विशेषक ही हुआ करता है। जो विशेषताका सपन करे, स्थापन करे उसे शब्द कहते हैं। तो शब्द जो भी कहे जायेंगे वे विशेषताको कहने वाले होंगे। वस्तुके पूर्ण स्वरूपको कहने वाले न होंगे। तो ज्ञानमें तो आ जाता है पदार्थ। अब उस विज्ञात पदार्थको कहनेका जब प्रयत्न संतोंका होता है तो भेददृष्टि करके अनुकूल अंश बताकर वर्णन करते हैं। सो वे यहाँ देश देशांश गुण गुणांशके रूपसे कहे गए। वे चारों अभिन्न हैं और उन चारों की अभिन्नताको द्रव्य कहते हैं। यों चतुर्थ लक्षण जो द्रव्यका कहा गया समगुण-पर्यायः द्रव्यं है वह सब समाधानोंसे परिपूर्ण है।

इदमस्ति यथा मूलं स्कंधः शाखा दलानि पुष्पाणि।
गुच्छाः फलानि सर्वाण्येकालापात्तदात्मको वृक्षः ॥ ७७ ॥

उदाहरण पूर्वक देश, देशांश, गुण, गुणांशोंका एकालापसे द्रव्य संज्ञाका वर्णन—द्रव्य गुणोंके इस प्रकार समुदायरूप है इसका स्पष्टीकरण करनेके लिए यहाँ एक उदाहरण दिया जा रहा है, जैसे वृक्ष क्या चीज है? वह है स्कंध, शाखा पत्ता, फूल, गुच्छा, फल आदिक सभी चीजोंका समुदाय और समुदाय भी भिन्न-भिन्न रूप नहीं कि वृक्ष अलग चीज है और ये चीजें अलग हैं और उनके समुदायका नाम वृक्ष है इस प्रकार नहीं, किन्तु ये सभी फल फूल आदिक अंग ही एक शब्दसे वृक्ष कहे जाते हैं। जैसे पहिले बताया था कि गुण और पर्याय बराबर द्रव्य हैं इसी प्रकार यहाँ भी समझना कि तना, साखा, पत्ता, फूल आदिक व्यवहारमें वृक्ष हैं। इन सबको एक शब्द से वृक्ष कहते हैं। वृक्षको छोड़कर ये साखा पत्ते आदिक कोई भिन्न पदार्थ नहीं हैं इसी प्रकार देश देशाँश गुण गुणांशका समुदाय द्रव्य है। ये पृथक-पृथक चीजें हुई और उनका समुदाय करके वृक्ष बताया हो ऐसा नहीं, किन्तु ये सभी ही एक शब्दसे द्रव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहे जाते हैं। वस्तुतः द्रव्यसे भिन्न न ये देश देशांश, गुण गुणांश हैं और देश देशांश गुण गुणांशसे भिन्न न कोई द्रव्य है। एक सत् है कोई उसको ही समझानेके लिए उसकी विशेषतायें बतायी जा रही हैं। वे विशेषतायें भिन्न तत्त्व नहीं है। यों भींटमें चित्रकी तरह द्रव्यमें प्रदेश है, गुण है इस प्रकारकी भिन्नता नहीं समझना है तब यह जो लक्षण किया गया है चौथा अंतिम समुगुणपर्याय: द्रव्यं, अर्थात् गुण और पर्यायके बराबर द्रव्य होता है यह लक्षण युक्त सिद्ध होता है।

यद्यपि भिन्नोऽभिन्नो दृष्टान्तः कारकश्च भवतीह ।
ग्राह्यस्तथाप्यभिन्नो साध्ये चास्मिन् गुणात्मके द्रव्ये ॥ ७८ ॥

अभिन्न कारक व आधाराधेयभावकी द्रव्य लक्षणमें ग्राह्यता — कारक और आधार आधेयभाव या कहो सम्बन्ध अथवा आधार आधेय भाव ये दोनों ही भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भी लग सकते हैं और अभिन्न पदार्थोंमें भी लगाये जाते हैं। दृष्टान्त भी दोनों प्रकारके बहुत हैं लेकिन गुणपर्यायवान द्रव्य है इस विषयमें अभिन्न आधार आधेयभाव और अभिन्न सम्बन्धकी बात समझना चाहिए। परमार्थतः तो अभिन्न सम्बन्ध और अभिन्न आधार आधेयपना ही है। भिन्न-भिन्न दो वस्तुओंका आधार आधेय क्या ? प्रत्येक वस्तु अपके स्वरूपमें है, पररूपमें नहीं है, अपने ही गुणोंमें अपने ही पर्यायोंमें हैं, दूसरेके गुणपर्यायमें नही। यहाँ तक कि आकाशमें भी ये जीव बस रहे हैं लेकिन परमार्थतः आधार आधेयभाव आकाश और जीव इन दोमें परस्पर नहीं है। आकाश आकाशके प्रदेशमें हैं और जीव जीवके प्रदेशमें है। जीवका आधार स्वयं जीव है। आकाशका आधार स्वयं आकाश है। यों आधार आधेयभाव परमार्थतः एक पदार्थमें ही समझानेके लिए कहा जाता है, इसी प्रकार सम्बन्ध भी परमार्थतः स्वयंका स्व है, खुद ही स्व है, खुद ही स्वामी है। जैसे आकाशका स्वामी अन्य कौन है ? आकाश ही आकाशका स्वामी है। आकाशका स्वरूप है वह तो स्व है और आकाश जो पदार्थ है वह स्वामी है जीवका स्वामी कौन ? जीवका स्वरूप है वह जीव स्व है और वही जीव उस स्वका स्वामी है। तो परमार्थतः सम्बन्ध भी एक अद्वैत पदार्थमें समझानेके लिए है, फिर भी लोक व्यवहारमें अनेक दृष्टान्त ऐसे मिलते हैं कि ये भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें भी आधार आधेयभाव और सम्बन्ध बताया जाता है। इसका दृष्टान्त स्वयं आगे कहा जायगा। अब उनमेंसे प्रथम भिन्नताके दृष्टान्त दिये जा रहे हैं।

भिन्नोप्यथ दृष्टान्तो भित्तौ चित्रं यथा दधीह घटे ।
भिन्नः कारक इति वा कश्चिद्धनवान् धनस्य योगेन ॥ ७९ ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भिन्न आधाराधेयभावके दृष्टान्त—आधार आधेयकी भिन्नताका दृष्टान्त है जैसे भींटमें चित्र अथवा घडेमें दही। दो दृष्टान्त यहाँ भिन्न आधार आधेयभावके प्रतिपादनके लिए कहे गए हैं। भींट जुदा पदार्थ हैं और उस पर खिंचा हुआ चित्रजुदा पदार्थ है। भींटके ऊपर चित्र खिचा है, भींट पहिलेसे थी, चित्र पीछे किया गया। भींट और चित्र ये दो भिन्न–भिन्न पदार्थ होकर भी यह विदित हो रहा है कि भींटमें चित्र है। यह भी भींट नहीं विदित हो रहा है यह तो है आधार आधेयभाव वहाँ जच रहा है यह तो है आधार आधेयकी भिन्नताका दृष्टान्त। अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिए! घडेमें दही—घड़ा भिन्न पदार्थ है दही भिन्न पदार्थ है। घड़ा पहिलेसे है, दही उसमें बादमें डाला। दहीके प्रदेशमें दही है, घड़ेके प्रदेशमें घड़ा है तो भिन्न–भिन्न दो चीजोंमें आधार आधेय बताया है वह भिन्नताका आधार आधेय भाव है। इसी प्रकार सम्बन्ध भीं भिन्नतामें लोक व्यवहारमें किया गया है। जैसे किसी पुरुषको धनके सम्बन्धसे कहना कि यह धनवान है, धन जुदा पदार्थ है और यह पुरुष जुदा है। धनके सम्बन्धसे उस पुरुषको धनवान कहा है तो भिन्न सम्बन्ध कारक है। धन स्व है, पुरुष को स्वामी कहा गया है। यह परमार्थतः स्व स्वामी नहीं है, किन्तु भिन्न–भिन्न पदार्थोंमें भी लोकव्यवहारकी दृष्टिसे स्वस्वामी सम्बन्ध बनाया गया है। पर प्रकृतिमें इन दोनों बातोंसे भिन्न है गुण पर्याय वाले द्रव्यकी बात। जैसे धनके सम्बन्धसे पुरुष को धनवान कहा, इस तरह गुणपर्यायके सम्बन्धसे द्रव्यको गुणपर्यायवान न समझना। जैसे धन जुदा है पुरुष जुदा है ऐसे ही गुणपर्याय जुदा हो और द्रव्य जुदा हो यह न समझना। तो भिन्नताका सम्बन्ध गुणपर्यायका द्रव्यमें नहीं है। अब आधार आधेयकी अभिन्नताका दृष्टान्त बताते हैं।

दृष्टान्तश्चाभिन्नो वृक्षे शाखा यथा गृहे स्तम्भः।
अपि चाभिन्नः कारक इति वृक्षोऽयं यथा हि शाखावान् ॥८०॥

अभिन्न कारक व अभिन्न आधाराधेय भावका दृष्टान्त—जैसे कहा—वृक्षमें शाखायें हैं। शाखाओंसे भिन्न कोई वृक्ष हो, फिर उसमें शाखायें आयें ऐसा नहीं है। भिन्न आधार आधेयभावकी बात प्रायः इस तरह शीघ्र समझमें आती है कि आधार आधेयके बिना अलग पहिलेसे पड़ा हो और फिर आधारमें आधेयका सम्बन्ध किया गया हो। जैसे घड़ा पहिले अलग था, दही जुदा था, फिर घड़ेमें दहीका सम्बंध किया तो वह भिन्न आधार आधेयका विषय बन गया। तो अलग अलग पड़े हुएका सम्बन्ध बननेपर आधार आधेयभाव बनता है। और कहीं अलग अलग न भी पडे हों फिर भी भिन्न आधार आधेयभाव है। जैसे जहाँ धर्म द्रव्य है वहीं अधर्म द्रव्य है वहीं आकाश द्रव्य है ये कहीं हटते नहीं हैं फिर भी आकाशमें धर्मद्रव्य है, अधर्म द्रव्य है, यह भी परमार्थतः आधार आधेयभावकी चीज है, पर प्रतिपादन और परिज्ञानके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयत्नके क्षेत्रमें प्रायः ऐसा ही सुगमतया समझमें आता है कि भिन्न आधार आधेय-भाव वहाँ बनता है जहां आधेयके सम्बन्ध बिना भी आधारभूत पड़ा हुआ हो और पश्चात् उसमें उस पदार्थका सम्बन्ध हो जिसे आधेय कहा गया है। इस तरहकी बात द्रव्य और गुणपर्यायके विषयमें है ही नहीं। वृक्षमें साखाओंकी तरह आधार आधेय-भावकी बात द्रव्योंमें गुणपर्यायकी बतायी जा सकती है। जैसे वृक्ष पहिले हुआ शाखायें बादमें सम्बन्धित हुई ऐसा नहीं है। वृक्ष जुदे प्रदेशमें रहता हो, शाखायें जुदे प्रदेशमें हो, यह भी नहीं है। वृक्षके स्वयंके अपने प्रदेश जुदे हों और शाखा आदिकके प्रदेश स्वयंके वृक्षसे जुदे हों ऐसा भी नहीं है। तो जैसे वृक्षमें शाखा अथवा घरमें खम्भा ये कोई जुदे नहीं हैं, ऐसे ही समझना कि द्रव्यमें गुणपर्याय। द्रव्य, गुण, पर्याय बिल्कुल पहिलेसे अलग रहते हों और गुणपर्याय द्रव्यके बिना अलग रहते हों, पश्चात् सम्बन्ध होता हो ऐसा नहीं है। अथवा द्रव्य, गुण, पर्याय, आकाश, धर्म, अधर्म काल आदिककी तरह अनादिसे ही एक जगह हों और गुण स्वयंके प्रदेशमें हों, प्रदेश स्वयंके अन्य प्रदेशमें हों और द्रव्य स्वयंके अन्य प्रदेशमें हों, ऐसा भी नहीं है, किन्तु गुण और पर्याय इनके ही बराबर द्रव्य है।

द्रव्यकी समगुण पर्यायितासे अखण्डताका प्रकाश—सुगमतया यह समझना कि द्रव्य एक सत् है, अवक्तव्य है, अखण्ड है, परिणमन शील है, एक स्वभावी है। प्रतिसमय एक परिणमन है। अब उस ही चीजको जब समझानेके क्षेत्रमें लाते हैं तो भेद दृष्टि करके समझाना होता है और तब देश देशांश, गुण गुणांश अथवा गुण-पर्यायोंका भेद करके इन शब्दों द्वारा समझाते हैं कि द्रव्यमें गुण और पर्यायें हैं अथवा जैसे वृक्षको कह देते हैं कि यह साखावान वृक्ष है, सम्बन्ध कारक जैसे प्रयोगमें बोलने पर भी साखायें जुदी हों, वृक्ष जुदे हों ऐसा नहीं है। इसी प्रकार गुणपर्याय वाला द्रव्य है। इस तरह सम्बन्ध कारकके उपदेशमें बल देनेपर भी गुण पर्याय जुदे हों और इनका स्वामी द्रव्य जुदा हो ऐसा नहीं है। द्रव्यत्वके नाते द्रव्यत्व शक्तिके कारण पदार्थ प्रतिसमय परिणमनशील है। यह एक पदार्थकी विशेषता बतायी गई है। इस विशेषताके बोध होनेपर यह बोध होता है कि उस पदार्थमें परिणमनकी शक्ति पायी जाती है और परिणमन रहा है किसी व्यक्तरूप तो उस व्यक्तरूप परिणमनेकी इसमें शक्ति है, इस तरह शक्तिके बोधसे द्रव्यके गुण समझे जाते हैं। जो द्रव्यमें शक्तियाँ हैं उन्हें ही द्रव्यके गुण कहते हैं, क्योंकि शक्तियोंके रूपसे उस द्रव्यके भेद किए गए समझमें। और उस शक्तिके जो व्यक्तरूप हैं वे पर्याय कहलाते हैं। तो यों वही ही एक है। किस रूपमें स्फुटित होता है और उसकी प्रकृति पदार्थका शील किस प्रकारका है, ये सब बातें प्रतिपादनके क्षेत्रमें आयीं और आर्षपरम्परा गुणपर्यायके रूपमें उस द्रव्यका विस्तार बताया गया है। तो यहाँ जैसे वृक्ष साखावान है यों ही अभिन्न सम्बन्ध कारकमें लोकव्यवहार है। इसी प्रकार द्रव्य गुणपर्यायवान है, यह भी अभिन्न सम्बंध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारकमें समझानेके लिए एक व्यवहार किया जाता है। वस्तुतः जो चौथा लक्षण किया गया है कि समान गुण पर्यायको द्रव्य कहते हैं अर्थात् गुण और पर्याय यही सब एक शब्दके द्वारा द्रव्य कहे जाते हैं।

समवायः समवायी यदि वा स्यात्सर्वथा तदेकार्थः।
समुदायो वक्तव्यो न चापि समवायवानिति चेत् ॥ ८१ ॥

द्रव्य और गुणको अभिन्न एवं एकार्थक माननेपर किसी एककी वक्तव्यताका औचित्य माननेकी आरेका—यहाँ शङ्काकार शङ्का करता है कि उक्त कथनमें द्रव्य और गुणको अभिन्न कहा गया है। तो वे द्रव्य गुण सर्वथा एकार्थक हैं यह कहो अथवा समुदाय समुदायी कहो। समुदायके मायने है गुण और समुदायीके मायने है द्रव्य। ये दोनों यदि बिल्कुल एक अर्थ ही हैं अथवा कहो समवाय समवायी। समवायके मायने है गुण और समवायीका अर्थ है द्रव्य। यदि ये दोनों समवाय समवायी सर्वथा एकार्थक हैं तब तो एक समुदायका ही कथन कीजिये! समवायके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। फिर क्यों यहाँ दोनोंका कथन करके विश्लेषण किया जा रहा है अथवा अनर्थक प्रलाप किया जा रहा है? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं:—

तन्न यतः समुदायो नियतं समुदायिनः प्रतीतत्वात्।
व्यक्तप्रमाणसाधितसिद्धत्वाद्वा सुसिद्धदृष्टान्तात् ॥ ८२ ॥

द्रव्य और गुणमें पार्थक्य न होनेपर भी स्वरूपभेदसे दोनोंकी प्रतीति होनेका समाधान—शंकाकारकी उपयुक्त शंका कि समुदाय और समुदायी जब अभिन्न हैं तो उसमें एकका ही वर्णन करना चाहिए था। यह शङ्का युक्त नहीं है, कारण कि समुदायीका बिल्कुल सुनिश्चित अवगम हो रहा है। समुदाय तो नियमसे समुदायीका होता है। यह बात पहिले भी प्रमाणसे सिद्धकी गई थी और इसके सम्बंधमें अनेक दृष्टान्त भी हैं। समुदाय समुदायी ये भिन्न-भिन्न प्रदेश वाले नहीं हैं। अतएव अभिन्न हैं पर समुदाय जिनका किया जाता है उनका स्वरूप कुछ और है और समुदायका स्वरूप कुछ और है। जैसे अनेक मणियोंका एक हार बनाया जाता है तो हार तो समुदायी है और वे एक एक मणि समुदाय गुण हैं, जिनका कि समुदायरूप हार माना गया है। तो मणियोंका स्वरूप और है और उस हारका स्वरूप और है। जो काम एक मणिमें होता है वह काम हार नहीं कर रहा और जो काम हारसे होता है वह काम मणियोंमें नहीं होता। जैसे बहुत सी सींकोंको बाँधकर एक सोहनी बना ली जाती है जिससे कि झाड़नेका काम करते हैं। अब वह सोहनी सींकोंसे अलग नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं और वे सींके सोहनीसे अलग नहीं हैं लेकिन एक एक सींकका स्वरूप देखा जाय तो कुछ और नजर आता है और उनका काम भी जुदा नजर आता है। और जब समुदायमें सोहनीपर दृष्टि देते हैं तो उसका स्वरूप और काम जुदा नजर आता है। झाड़नेका काम सोहनी करेगी सींकें न करेंगी और एक सींकसे जो बात बनती है, जेसे दाँत कुरेदना आदिक बातें, वे झाड़ूसे न बनेंगी। तो समुदाय और समुदायी प्रदेश की दृष्टिसे अभिन्न हैं और समुदाय ही सब मिलकर समुदायी होते हैं फिर भी निरूपण दोनोंके किए जानेकी आवश्यकता होती है, इसी प्रकार गुणोंका समुदाय द्रव्य है, ऐसा कहनेपर द्रव्य दृष्टिसे द्रव्यकी जो बात समझमें आयी वह स्वरूप भिन्न हुआ, उसका काम भी भिन्न हुआ और जब केवल एक एक गुणपर दृष्टि दी, पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमें जब एक एक ही गुण नजरमें लिया तो प्रत्येक गुणका स्वरूप जुदा है और उसमें जो कुछ व्यक्ति हुई क्रिया हुई वह भी समुदायकी एक क्रियासे जुदी प्रतीत हुई, इतनेपर भी वे गुण, वे पर्यायें कोई भिन्न भिन्न प्रदेशमें नहीं हैं। सब कुछ एक ही पदार्थकी बात कही जा रही है, किन्तु समझनेके प्रसंगमें भेद दृष्टिका उपयोग होता है और तब गुण और द्रव्यके कहनेकी आवश्यकता बिल्कुल सही प्रतीत होती है। अब इसी बातको दृष्टान्त पूर्वक कहते हैं।

स्पर्शरसगन्धवर्णा लक्षणभिन्ना यथा रसालफले।
कथमपि हि पृथक्कर्तुं न यथा शक्यास्त्वखण्डदेशत्वात् ॥८३॥

लक्षणभेद होनेपर भी गुणोंका द्रव्यसे पार्थक्य किये जानेकी अशक्यता का उदाहरण—जैसे आमके फलमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये भिन्न–भिन्न हैं लेकिन कोई इन्हें प्रथक कर सकनेमें समर्थ नहीं हैं। इन्हें कभी प्रथक किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि सबका प्रदेश एक है, अखण्ड है, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये प्रत्येक प्रदेशमें रह रहे हैं। ऐसा नहीं है कि आमके फलमें कुछ हिस्सेमें स्पर्श हो, कुछमें रस हो, कुछमें गंध और कुछमें वर्ण हो । जो व्यक्त रूपसे स्पर्श रस, गंध, वर्ण समझमें आते हैं वे तो पर्यायें हैं। उन गुणोंके व्यक्त रूप हैं, पर उन पर्यायोंका आधारभूत जो शक्तिरूपमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं वे तो अव्यक्त चीज हैं, अर्थात् गुण हैं। उन गुणों का आमके फलमें कैसे प्रदेश भेदके रूपसे कहा जा सकता है ? पर ये चारों शक्तियाँ अपना जुदा जुदा स्वरूप रख रही हैं। अखण्ड प्रदेशमें होनेपर भी ये चारों शक्तियाँ एक न हो जायेंगी। और, वहाँ भी विदित हो रहा है कि ये चारों शक्तियाँ अपना भिन्न–भिन्न स्वरूप रख रही हैं, तभी इन शक्तियोंके जो परिणमन हैं वे भिन्न भिन्न इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होते हैं स्पर्शका ज्ञान स्पर्श इन्द्रियसे होता है। उस स्पर्शको रसना, घ्राण आदिक इन्द्रियसे नहीं समझ सकते। कोई आँखें खोलकर किसी वस्तुका स्पर्श जाने तो नहीं जान सकता है या सूंघकर किसी भी प्रकार अन्य इन्द्रियसे अन्य इन्द्रिय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के विषय नहीं जाने जा सकते। और, कभी लगता है ऐसा, किसी आमफलको देखनेसे बता दिया जाता है कि यह कोमल है, मीठा है, तो यह एक अनुमानके बलपर बताया जाता है। कहीं नेत्र इंद्रियसे ही स्पर्श, रसका ज्ञान किया जा रहा हो सो बात नहीं, किंतु उसका अनुभव हो चुका है कि इस आमफलमें इस इस प्रकारका रूप होता है, इसमें इस तरहका रस, ऐसा स्पर्श होता है, यह बात अनेक बार अनुभवमें आई है। तब रस नेत्र इन्द्रियसे निरखकर अन्य विषय बता दिया जाता है। वह सब अनुमान ज्ञान है, पर साक्षात् अनुभवात्मक ज्ञात तो जिस इंद्रियका जो विषय है उस इंद्रियके द्वारा ही होता है।

विभिन्न इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होनेसे स्पर्शादिकमें स्वरूपभेदकी प्रतीति होनेपर भी आम्रफलसे पृथक स्पर्शादि गुणोंकी अनुपलब्धि - आमके फलमें स्पर्शका ज्ञान जो हुआ है वह स्पर्शन इंद्रिसे हुआ है। रसका ज्ञान रसना इंद्रियसे होता है। अब रसना इंद्रियके विषयभूत तत्त्व ये कभी भी एक नहीं हो सकते। यदि ये एक होते तो किसी भी एक इंद्रियसे जान लिए गए होते। तो इनका लक्षण भिन्न है, यह बात इससे भी सिद्ध हो जाती है कि उनका पृथक पृथक इन्द्रियसे बोध होता है। खट्टा मीठा आदिक व्यक्त रस किसी अन्य इंद्रियसे भी जान लिया जाय यह सम्भव नहीं है। यद्यपि स्पर्शन इंद्रियसे स्पर्शका बोध करते ही रसका भी बोध कर लिया जाता है किन्तु वह अनुमान ज्ञानके बलसे है। वे सब मानसिक ज्ञान हैं, पर रस का अनुभवन तो रसना इंद्रियसे ही जाना जा सकता है। गंधका ज्ञान नासिका इंद्रिय से होता है, अन्य उपायोंसे भी गंधका ज्ञान किया जाता है, पर वह अनुभवरहित ज्ञान है। अन्य प्रकारसे गंधका ज्ञान किया जाना अनुमान ज्ञान जैसा है, पर उस गंधका अनुभवन होना वह ज्ञान नासिका इंद्रियसे ही हो सकता है। रूपका ज्ञान चक्षुइंद्रियसे होता है। भले ही कोई किसी अंधकारमें किसी आमको चूस रहा है तो रसका तो साक्षात् अनुभव कर रहा है, पर साथ ही उसे रूपका भी ज्ञान हो रहा। पर वह ज्ञान स्पस्ट ज्ञान नहीं है, अनुमान ज्ञानसे है। रूपका स्पष्ट ज्ञान तो चक्षु इंद्रियसे ही हो सकता है। तो चार इंद्रियोंके ये विषयभूत जुदे जुदे हैं, इससे सिद्ध है कि ये चारों भिन्न भिन्न लक्षण वाले हैं। तो भिन्न भिन्न लक्षणवाले होनेपर भी क्या इन चारों को पृथक किया जाना शक्य है ? नहीं ! क्योंकि इन चारोंका तादात्म्य सम्बन्ध है। जिस ही प्रदेशमें रूप है उस ही प्रदेशमें रस आदिक हैं अथवा रूप रस आदिकमय ही तो वह आम है। प्रदेश भी क्या जुदा है ? रूप, रस, गंध, वर्णका ही तो नाम प्रदेश है। प्रदेश कोई जगह अलगसे आममें बनी हो, जो कि रूप, रस, गंध, स्पर्शसे खाली हो और वहाँ रूप रस आदिक आयें, ऐसा तो नहीं है। तो वे रूप आदिक गुण भी जुदे नहीं हो सकते। इस कारण समुदायरूपसे तो वह अभिन्न है लेकिन लक्षणभेदसे वह भिन्न है। यों यह बात सिद्ध होती है कि गुण और गुणीमें कथंचित् भेद है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथंचित् अभेद है। इसी बातको एक सारांश रूपमें स्पष्ट कर रहे हैं।

अथ एव यथा वाच्या देशदेशांशा विशेषरूपत्वात्।
वक्तव्य च तथा स्यादेकं द्रव्यं त एव सामान्यात् ॥ ८४ ॥

विशेषरूपतासे देश गुण पर्यायमें परस्पर भिन्नता व सामान्यापेक्षया एकता गणगुणीमें भेद और कथंचित् अभेदकी पद्धतिसे जो वर्णन किया गया है उस कथनसे यह बात भली प्रकार सिद्ध हो जाती है कि विशेषरूप होनेसे वे देश गुण, पर्याय सभी जुदे जुदे तत्त्व हैं और सामान्य रूप होनेसे वे सभीके सभी एक द्रव्य कहलाते हैं। जैसे जब विशेषताओंपर दृष्टि दी थी तो रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब भिन्न भिन्न प्रतीत हुए थे, लेकिन सामान्यदृष्टिसे तो वे सब एक ही थे। ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ एक अखंड सत् है, पर उसमें जब हम विशेषतायें समझने चलते हैं तो उसमें अनेक शक्तियाँ अर्थात् गुण और उन शक्तियोंके अनेक परिणमन याने गुणांश और उस पदार्थका फैलाव विस्तारके रूपसे देखा तो वहाँ नजर आया देश देशांश। तो यों विशेषरूपकी दृष्टि होनेपर वे देशांश गुण और गुणांश भिन्न भिन्न सिद्ध होते हैं, प्रतीतिमें आते हैं और सामान्यदृष्टिसे द्रव्यार्थिकनयसे जब उनको निरखा जाता है तो वे सब एक ही अखंड सत् है। यों द्रव्य और गुण भिन्न भिन्न प्रदेश न होनेपर भी उनका लक्षण भिन्न भिन्न है। अतएव समझानेके क्षेत्रमें गुण गुणीका जुदा जुदा कथन करना सही है।

अथ चैतदेव लक्षणमेकं वाक्यान्तरप्रवेशेन।
निष्पूतिघपूतिपत्त्यै विशेषतो लक्षयन्ति बुधाः ॥ ८५ ॥

वाक्यान्तरप्रवेशसे द्रव्यके लक्षणके कथनका उपक्रम द्रव्यके चार प्रकारसे जो लक्षण बताये गए वे सब गुणपर्ययवद्द्रव्यं इस प्रथम लक्षणसे ही एक संशोधित विधिसे बतानेकी बात कही गई है। अब उस ही लक्षणको और स्पष्ट करनेके लिए दूसरी रीतिसे द्रव्यका लक्षण कहा जायगा। लक्षण द्रव्यमें जितने प्रकारसे भी किए जायें या जिस पदार्थके लक्षण अनेक भी हों तो भी उन लक्षणोंका परस्परमें द्रव्यमें विरोध न होना चाहिए, तभी वह लक्षण कहला सकता है। तो इस पद्धतिसे अब जो लक्षण कहा जायगा उस लक्षणका उक्त लक्षणसे कोई विरोध नहीं किंतु उस ही पूर्वोक्त लक्षणको स्पष्ट करने वाला ही द्वितीय लक्षण कहा जायगा। जैसे किसी पुरुषकी पहिचानके लिए एक पहिले लक्षण कहा गया, जो कोई पुरुष उस लक्षणसे फायदा नहीं उठा रहा, उसे उसका परिज्ञान नहीं हो रहा तो दूसरा लक्षण बताते हैं, किंतु यह दूसरा लक्षण उस ही प्रथम लक्षणका स्पष्ट बोध करानेमें भी समर्थ है और जानने वाले द्वितीय लक्षणसे प्रथम लक्षण और अलक्ष दोनोंका भान कर लेते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो यहाँ द्रव्यका लक्षण कहा गया था 'गुणपर्ययवत् द्रव्यं' उसीका खुलासा करनेके लिये अब लक्षण कहते हैं।

उत्पादस्थितिभंगैर्युक्तं सदद्रव्यलक्षणं हि यथा।
एतैरेव समस्तैः प्रोक्तं सिद्धेत्तस्मं न तु व्यस्तैः ॥ ८६ ॥

उत्पादस्थितिभङ्गमय सत्त्व द्रव्यका लक्षण—पहिले जो द्रव्यका लक्षण कहा गया था सत् इस ग्रन्थमें 'तत्त्वं सार लाक्षणिकं' इस आठवें छंदमें द्रव्यका लक्षण कहा गया था कि वस्तु सत्ता लक्षण वाला है। तो वह सत् कैसा है कि उत्पादस्थिति और विनाशसे युक्त है। द्रव्यका लक्षण सत् है, ऐसे कथनका भाव यह है कि उत्पाद, स्थिति और व्यय इन तीनोंसे सहित जो सत् है वह द्रव्यका लक्षण है। सत्में ये तीन धर्म उत्पाद व्यय ध्रौव्य एक साथ होते हैं। क्रमसे नहीं होते किन्तु एक ही कालमें होते हैं। उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंको लिए हुए ही सत् होता है। यदि उन तीनोंमें से कोई अंश न माना जाय तो वह सत् नहीं रह सकता, इसी बातको स्पष्ट करनेके लिए कहते हैं।

अयमर्थः प्रकृतार्थो ध्रौव्योत्पादव्ययास्त्रयश्चांशाः।
नाम्ना सदिति गुणः स्यादेकोऽनेके त एकशः प्रोक्ताः ॥ ८७ ॥

उत्पादव्यय ध्रौव्यांशोंकी एकनामसे सन्मात्रता—उत्पादव्यय और ध्रौव्य ये तीनों ही अंश एक नामसे कहे जाते हैं, इस कारण उन तीनोंके ही समुदायको सन्मात्र कह देते हैं। स्वरूप दृष्टिसे देखा जाय तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनोंका स्वरूप न्यारा न्यारा है लेकिन इन तीनोंसे रहित सत् हो ऐसी बात नहीं है। अनन्त शक्तियोंका स्वरूप न्यारा न्यारा है। अगर निराला स्वरूप न हो तो सब कुछ मिल कर एक शक्ति मात्र ही रह जायगी। तो शक्तियोंका स्वरूप न्यारा न्यारा होनेपर भी उन शक्तियोंसे पदार्थ अभिन्न है ऐसे ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनका अर्थ न्यारा न्यारा है। उत्पादका अर्थ है उत्पन्न होना तो उत्पन्न हाना जुदी चीज हुई और विलीन होना जुदी चीज हुई। उत्पन्न होनेका ही नाम तो विलीन नहीं है। तो स्वरूप भेद है उनमें मगर उत्पन्न होनेमें जो बात है उसे ही उत्पादरूपसे कहा जाता और उस हीको विलीन रूपसे कहा जाता। दो दृष्टियोंसे उत्पाद और व्यय दोनों बातें एक पर्यायमें कही जाती हैं। जैसे घट फूटा और खपरियाँ हुईं तो खपरियोंका उत्पाद और घटका विनाश होकर बात क्या बनी? वह सब कुछ एक ही है। जो बना उस हीमें घटके विनाशका और खपरियोंके उत्पादका कथन होता है। तो उत्पन्न होनेका नाम और विलीन होने का नाम यों दोनोंका स्वरूप न्यारा न्यारा है लेकिन यह सब एकमें ही बताया जाता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। इसी प्रकार जिस कालमें उत्पाद व्ययकी बात कही जा रही है, उस ही कालमें ध्रुव भी है। तो दृष्टि भेदसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी बात निरखी जाती है। लेकिन वे सत्से निराले नहीं। इन तीनों के समुदायका नाम सत् है, अथवा यह कहो कि इन तीनोंको ही एक शब्दसे कहा जाता है कि द्रव्यके बोधके लिए सर्वप्रथम अस्तित्वका परिचय करना होता है। द्रव्यमें अस्तित्व नामका गुण है। उसीका नाम सत्ता है और सत् गुण ही उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है। तो उन उत्पादव्ययध्रौव्यके प्रत्येकका अर्थ किया जाय तो प्रत्येककी अपेक्षासे तीनों जुदे जुदे हैं, पर समुदायकी अपेक्षा वे एक एक सत् गुणस्वरूप हैं। अंशी अंशात्मक होते हैं, ऐसा स्वरूप जब दृष्टिमें नहीं रहता तब अनेक प्रकारके दर्शनोंका निर्माण हो जाता है। बस सब कुछ सत् है, जो कुछ भी हो वह सत् है। अब उस सत्की जो विशेषतायें बताई जाती हैं वे सब द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, नाना रूपोंमें विस्तृत हो जाते हैं, लेकिन वे सब नानारूप मिलकर एक शब्दसे सत् कहलाते हैं।

सत्की परिणमनशीलता—सत् एक ही है और जितना कथन है वह सब सत्का ही ब्योरा है। सत्के ही अंश कर करके वे सब उपदेश किए गए हैं। तो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यसे अनुस्यूत है। तीनों एक ही कालमें हैं एक ही सत्में है। इनका भिन्न भिन्न आधार नहीं और न ये भिन्न भिन्न रूपसे रहते हैं। जो कुछ है वह है और प्रतिसमयमें एक रूप होना और निरन्तर परिणमित होना ये दोनों बातें वस्तुमें अमिट स्वभाव रख रही हैं, बाकी जितने भी दर्शन शास्त्रमें वर्णन हैं वह इन दो तत्त्वोंका ही ब्योरा हैं और परिणमित होती है। होना, होते रहना, होते रहनेका विराम न आना, बस यही वस्तुमें स्वभाव पड़ा हुआ है, इसके बिना वह सत् ही नहीं रह सकता यों निरखनेपर फिर जो गुण, कर्म, सामान्य, विशेष आदिककी व्याख्या और जानकारी बनेगी, वह यथार्थरूपसे बनेगी और सत्ता और उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मकताका निर्णय न होनेपर दृष्टि चलित हो जायगी और अनेक रूपोंमें स्वरूपका वर्णन होने लगेगा। तत्त्व इतना ही है कि वस्तु सन्मात्र है और वह सत् उत्पाद व्ययध्रौव्यात्मक है और इसीसे यह व्यवस्था बनी है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे विलीन होगा और अपने ही स्वरूपसे सदा रहेगा। वस्तुस्वरूपकी यह जानकारी अनादि कालीन मिथ्या मोह अंधकारको दूर कर देती है। एक वस्तुका अन्य वस्तुके साथ सम्बन्ध मानना यही अज्ञान अंधेरा है और इसीमें विशुद्ध ज्ञानप्रकाश प्राप्त होता है। यही आत्माके कल्याणका उपाय है। अब यह बतलाते हैं कि सत्ता लक्षण वाला है द्रव्य, यों भी कहा गया और सन्मात्र है द्रव्य, यों भी कहा गया तो क्या यह दो प्रकारसे वस्तुस्वरूप है कि कोई वस्तु सत्ता वाली होती हो और कोई वस्तु सन्मात्र होती हो ? उत्तरमें यह कहा जायगा कि दोनों ही बातें एक हैं केवल दृष्टिका भेद है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लक्ष्यस्य लक्षणस्य च भेदविवक्षाश्रयात्सदेव गुणः ।
द्रव्यार्थादेशादिह तदेव सदिति स्वयं द्रव्यम् ॥ ८८ ॥

नयविवक्षासे सत्की गुणरूपता एवं द्रव्यरूपता—जब लक्ष्य लक्षणकी भेद व्यवस्था की जाती है तो सत उतना ही है, किन्तु जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षा हो तो वह सत स्वयं द्रव्यस्वरूप है अथवा वह द्रव्य सन्मात्र है । वस्तु एक है और वह जैसी है सो है । उसके केवल ज्ञाता रहें तो वहाँ कोई विकल्प, आपत्ति, विडम्बना, विवाद नहीं रहता । तो जो है सो जाननेमें आ गया । लेकिन जब अपने अथवा दूसरे को समझानेके क्षेत्रमें उतरा जाता है तो वहाँ लक्ष्य लक्षणका भेद तो प्रथम होता ही है । किसी भी पदार्थका परिचय पानेके लिए कोई एक मुख्य धर्म लक्ष्यमें आता है और उससे पदार्थका परिचय होता है । तो वह मुख्य लक्ष्य धर्म कोई भिन्न नहीं है, क्योंकि भिन्न है तो पदार्थका परिचय नहीं हो सकता । किसी भिन्न धर्मका किसी भिन्न धर्मीसे परिचय नहीं किया जाता । उस ही को लक्ष्य और लक्षणकी विधि बना कर समझा जाता है । वस्तु है और वह है बस इसीमें ही पर्याप्त है । जो है सो है । यों वस्तु सन्मात्र है, पर उसे लक्ष्यमें लेनेके लिये लक्ष्य लक्षणका भेद करके कहना होता है कि जिसमें सत्त्व पाया जाय वह सत है, स्वलक्षण है । तो लक्ष्य लक्षण की भेद विवक्षाका आश्रय होनेपर सत गुण ही है और वह सत गुण जहाँ पाया जाय उसे सत कहते हैं । लेकिन जब भेद विवक्षा नहीं रहती, सामान्य दृष्टि रहती है एक द्रव्यका ही अभिप्राय रहता है तो उस समय विकल्प बुद्धि हटकर केवल एक सामान्य दृष्टिमें सत्ता और द्रव्य ये दो भिन्न नहीं रहते । अतः द्रव्य है सो ही सत्ता है । सम्पूर्ण गुण जितने भी जिस पदार्थमें हैं उन सब गुणोंमें अभिन्नता है क्योंकि वस्तु एक सत्तात्मक है और जैसा है सो ही है, उसीको विशेषतया समझानेके लिए किन्हीं विशेषोंको विपोधिक किया जाता है । वह विशेष उस द्रव्यसे निराला नहीं है । जितने भी विशेष गुण हैं, शक्तियाँ हैं उनमें परस्पर अभिन्नता है । तब किसी भी एक गुणके द्वारा समग्र वस्तुका ग्रहण हो जाता है । लक्ष्यमें आया उस पदार्थका गुण फिर तो किसी भी एक गुणके लक्षणसे वह परिपूर्ण पदार्थ लक्ष्यमें आ जाता है । तब सत्ता सन्मात्र इतना कह देनेसे भी द्रव्यका ही बोध हुआ और द्रव्यपना ऐसा कहनेसे भी द्रव्यका बोध हुआ और वस्तु वस्तुत्व पदार्थ आदिक शब्दोंसे कहनेपर भी उस वस्तुका ही बोध होता है । नय दृष्टिसे सत्ता, द्रव्यत्व, वस्तुत्व कुछ भी कहा जाय, केवल उन्हीं गुणोंका ग्रहण होगा, क्योंकि सत्ता कहनेसे केवल सत्त्वकी बात ही आश्रयमें है । द्रव्यत्व कहनेसे केवल द्रव्यकी ही बात आश्रयमें है । तो भेद दृष्टिमें उन गुणोंमें स्वरूप भेद होनेसे भिन्न भिन्न कथन होता है लेकिन अभेद बुद्धि होनेपर उन सब गुणोंके द्वारा एक ही वस्तु लक्ष्यमें आती है और इस प्रक्रियासे उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीन अवस्थाओंके परिज्ञान से द्रव्यका परिज्ञान होता है । तात्पर्य यह हुआ कि द्रव्य सन्मात्र है । इसका भाव यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है ।

वस्त्वस्ति स्वतः सिद्धं यथा तथा तत्स्वतश्च परिणामि ।
तस्मादुत्पादस्थितिभंगमयं तत् सदेतदिह नियमात् ॥ ८९ ॥

वस्तुकी स्वतः सिद्धता—उक्त समस्त कथनका तात्पर्य यह है कि वस्तु स्वतः सिद्ध है और इसी कारण वह स्वतः परिणामी भी है । स्वतः सिद्ध और स्वतः परिणामी होनेके कारण वस्तु उत्पत्ति स्थिति और व्ययमय है । बस इसीका नाम सत् द्रव्य है सर्वप्रथम वस्तुके लक्षणमें बताया गया था कि वस्तु सन्मात्र है और वह स्वतः सिद्ध है । जो भी सत् होता है वह स्वतः सिद्ध ही है । स्वतः सिद्ध न माना जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि यह पहिले न था, किसी दूसरेने बनाया । सो ये दोनों ही बातें अयुक्त हैं । पहिले कुछ न हो और असत्से सत् बन जाय यह त्रिकाल हो नहीं सकता और, किसी भी सत्का निर्माण किसी पर पदार्थसे नहीं हो सकता । पर पदार्थसे किसी सत्का निर्माण हुआ तो वहाँ ये दो विकल्प होंगे कि पहिलेसे सत् हुए पदार्थका निर्माण किया या असत् पदार्थका परने निर्माण किया ? यदि सत् पदार्थका निर्माण किया तो नया निर्माण ही क्या हुआ ? यह कहा जा सकता है किन्हीं परिणमनोंके लिए कि किसी पदार्थका निमित्त पाकर विभिन्न परिणमनोंमें उत्पाद हो जाया करता है, किन्तु जो सत् नहीं है, असत् है उसका किसी भी परसे और किसी भी प्रकार निर्माण नहीं हो सकता । तब यह मानना ही होगा कि वस्तु स्वतः सिद्ध है । जो स्वतः सिद्ध है वह अनादि अनन्त होता है । उसकी कोई आदि ही नहीं होती । आदि हुआ करती है नितित्त भावकी, जो किसी अवसरमें किसी निमित्तको पाकर कोई नवीन उत्पाद होता है वह है सादि । सो वहाँ भी जिस मूलभूत द्रव्यमें कोई परिणमन बना है वह द्रव्य अनादि ही है । यों द्रव्य स्वतः सिद्ध अनादि ही होता है । इसी प्रकार जो वस्तु स्वतः सिद्ध है वह अनन्त होती है । उसका कहीं अन्त नहीं हो सकता । कोई भी सत् मूलतया बिल्कुल कुछ न रहे, असत् हो जाय यह त्रिकाल सम्भव नहीं है । किसी सत्का असत्त्व कैसे हो सकता हैं ? तो वस्तु स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, यह बात द्रव्यके अन्तः स्वभावपर दृष्टि देनेसे विदित होती है ।

वस्तुकी परिणामिता व उत्पादस्थितिभङ्गमयता—अब वस्तुके बहिरंग रूप पर दृष्टि दें तो उसके ये सब परिणमन नजर आते हैं । कोई भी सत् परिणमनके बिना हो ही नहीं सकता । तो प्रत्येक वस्तु परिणमनशील है । प्रतिसमय नवीन नवीन परिणमनसे परिणमता रहता है । परिणमनके सम्बन्धमें भी विचार करें कि वस्तुमें जो ऐसी परिणमिताकी कला है कि निरन्तर परिणमता ही रहे, यह कला किसी परमार्थसे आयी अथवा उसमें स्वतः पड़ी हुई है ? यदि पर पदार्थसे कला आयी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो इसका अर्थ है कि परिणामी नहीं है, किसी पर पदार्थने परिणमाया। तो जो स्वयं परिणमनशील नहीं उसे कोई भी परपदार्थ कभी परिणमा ही नहीं सकता। और यदि वह परिणमनशील है तो वह उसकी कला है। उसमें परकी कलाका क्या प्रसर है? तो वस्तु जैसे स्वतः सिद्ध है उसी प्रकार परिणामी भी है तो स्वतः परिणामी होनेके कारण वस्तु उत्पादव्ययमय है और स्वतः सिद्ध है, अविनाशी है अतएव ध्रुव है। तब सत्‌की यह विशेषता हुई कि वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। अर्थात् वस्तु द्रव्य दृष्टिसे नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। ये सब वस्तु स्वतः सिद्ध और स्वतः परिणमिताके कारण प्रसिद्ध ही हैं। अब यहाँ बतला रहे हैं कि वस्तुको यदि परिणामी न मानें तो उसमें क्या दोष आता है ?

नहि पुनरुत्पादस्थिति भंग मयं तद्विनापि परिणामात् ।
असतो जन्मत्त्वादिह सतो विनाशस्य दुर्निवारत्वात् ॥ ९०

वस्तुकी परिणामिताका समर्थन—यदि परिणामके बिना ही वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप माना जाय तो असत्‌की उत्पत्ति और सत्‌के विनाशका प्रसंग आयगा। इस समय पहिले इन दो विकल्पोंपर विचार करें कि वस्तुको परिणामरहित और उत्पादव्ययध्रौव्यरहित माननेमें विकल्प है अथवा उत्पादव्यय ध्रौव्यमय तो वस्तु है और उसे परिणामके बिना माना जाय क्या इस प्रकारका शङ्काकारका विकल्प है? यदि प्रथम विकल्पकी बात लें कि वस्तुमें न परिणाम है और न उत्पादव्ययध्रौव्य है तो उसका सत्त्व ही क्या रहा? और यदि दूसरा विकल्प लेते हैं कि परिणाम नहीं है किन्तु उत्पादव्ययध्रौव्य है तब तो प्रथम यह दोष है कि वस्तु परिणमनशील नहीं है और उसमें उत्पादव्ययध्रौव्य माना जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि वस्तु सर्वथा अनित्य हो जायगी। तब नये नये पदार्थका ही उत्पाद कहलायेगा और जो है उसका नाश होता जायगा, लेकिन असत्‌का उत्पाद और सत्‌का विनाश कभी सम्भव ही नहीं है, इस कारण वस्तुको स्वतः परिणामी मानना ही चाहिए। वस्तुको स्वतः परिणामी माननेपर और फिर उसमें उत्पादव्ययध्रौव्य समझनेपर यह बात सुविदित हो जायगी कि वस्तु अनादि अनन्त है, वह किसी परिणमनसे उत्पन्न होती है, किसी परिणमनसे नष्ट होती है और किसी तत्त्वरूपमें स्थिर रहा करती है। बनना बिगड़ना और बना रहना, यही पदार्थका स्वभाव है। और, यह बात तभी बन सकती है जब वस्तु स्वतः परिणमनशील हो। सो वस्तु स्वतः परिणमनशील है ही, यह कोई बनानेकी बात नहीं है। या कोई कानून निर्माणकी बात नहीं है। वस्तुमें जो धर्म है, वस्तु जिस प्रकारसे है उस प्रकारसे समझानेकी बात है। यदि किसी पदार्थको बनता हुआ माना जाय, उसके विपरीत और बना रहना न माना जाय तो बना ही क्या? उत्पाद भी सिद्ध नहीं हो सकता। किसी वस्तुका बिग-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ड़ना माना जाय और उत्पाद ध्रौव्य न माना जाय तो कुछ उत्पाद हुए बिना बिगड़ना ही क्या कहलायेगा ? यों ही ध्रौव्य न माना जाय तो उत्पादव्यय किसमें हुआ करे ? तो वस्तुमें उत्पादव्यय ध्रौव्य इन तीनोंका एक साथ होना स्वभाव है और ये सब है स्वतः परिणमनशीलताके कारण। तो वस्तु स्वतः सिद्ध है। स्वतः परिणामी है, इस कारण वह उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है।

द्रव्यं ततः कथञ्चित्केनचिदुत्पद्यते हि भावेन।
व्येति तदन्येन पुनर्नैतद्द्वितयं हि वस्तुतया ॥ ९१ ॥

वस्तुके ध्रुव होनेपर भी अवस्थादृष्टिसे वस्तुमें उत्पाद व्ययका कथन—वस्तु स्वतः सिद्ध है, अनादि अनन्त है, स्वतः परिणामी है और इसी कारण उत्पादव्यय ध्रौव्यमय है। इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि द्रव्य किसी अवस्थासे कथंचित् उत्पन्न होता है और किसी अन्य अवस्थासे कथंचित् नष्ट होता है और वस्तुकी स्थिति उसके मूल स्वभावपर दृष्टि देनेसे यह भी विदित होती है कि इसकी उत्पत्ति और नाश नहीं है। सदैव ध्रुव है। लोकव्यवहारमें भी जितनी घटनायें होती हैं, या जो पदार्थ दिखते हैं उन सबमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य विदित होता है। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना तो मिट्टी तो ध्रुव चीज है। पूर्व पर्यायमें भी मिट्टी थी और घड़ा पर्याय में भी मिट्टी है। इसमें तो ध्रुवताकी दृष्टि आयी और घडेकी अवस्थाके रूपसे उत्पाद हुआ और पहिले कुसूल पर्यायका विनाश हुआ तो यों उत्पादव्यय ध्रौव्य हुए बिना कायम न रह सका घड़ा वगैरह। यों ही सभी पदार्थोंमें उत्पादव्यय ध्रौव्य बराबर पाया जाता है। जीव द्रव्य सदा शाश्वत् है। उसका सत्त्व कभी नष्ट न होगा। निरन्तर उसमें उत्पादव्यय चलते रहते हैं।

हमारा वर्तमान परिणमन व कर्तव्य—आजकी हालतमें इस जीवका अनेक भवोंमें जन्म होना, मरण होना और कष्टोंसे अपना अनुभव बनाना ये सब बातें गुजर रही हैं, और, यहाँ मोहमें परिणत होकर जीव कदाचित् अपनी कल्पनाके अनुसार किसी घटनामें मौज भी मान लेता है लेकिन संसारकी सारी घटनायें विडम्बनायें हैं। इस घटनामें सार और शान्ति रंचमात्र नहीं है। यह उत्पादव्यय जीवका चल रहा है। और जब कभी इसका सुयोग आता है अपने स्वरूपका प्रकाश अपने ज्ञानमें समाता है तब इसे सर्वस्व अपने आपका आप ही स्वयं जचता है और एक विशिष्ट संकल्प हो जाता है कि मुझे अन्य कोई कार्य करने लायक नहीं पड़ा। केवल यह ही कार्य है कि अपने जन्म मरणका विनाश करूं और शाश्वत् सहज ज्ञानानन्द स्वभावका उपयोग बनाये रहूं। यद्यपि कहनेके लिए ये दो बातें हैं लेकिन उपाय एक ही है। जिस उपायसे सहज आनन्दका लाभ मिलता है और संसारके समस्त संकट दूर होते हैं वह उपाय है सहज शाश्वत् चैतन्य प्रकाशका उपयोग रखना। मैं देह आदिक सर्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थोंसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हूं, सूक्ष्म हूं, रूप आदिक मूर्तियोंसे जुदा हूं और ज्ञानमात्र हूं, केवल ज्ञान ज्ञानका ही मैं पुञ्ज हूं। ज्ञानभावको छोड़कर उसका और सत्त्व क्या है ? और एक घन ज्ञान है। ज्ञान ही ज्ञान है, ऐसा जो एक पदार्थ है वह मैं हूं। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्माका इस लोकमें है क्या ? किसी भी पदार्थसे रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसे ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वका परिचय पाऊं और उस हीका उपयोग बनाये रहूं तो संसारके जन्म मरणके समस्त संकट दूर हो सकते हैं। मैं हूं, सदा रहूंगा। तब अपना यह कर्तव्य है कि ऐसा उपाय बनाऊं कि सदा क्षोभरहित निराकुल आनन्दमय रहूं, ऐसी स्थिति पानेके लिए इन छोटे समागमोंका लगाव मोह छोड़ना पड़े तो बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सबका परित्याग करना चाहिए कि यह मैं ज्ञान अपनी श्रद्धामें ऐसी निर्मलता लाना चाहिए कि यह मैं ज्ञानमात्र सबसे निराला विशुद्ध स्वतः आनन्दमय हूं। इस स्वभावके अनुभवके उपायसे संसारके समस्त संकट दूर होते हैं। तो संसारका व्यय करना और कैवल्यका उत्पाद करना और अपने आपके सत्त्वको बनाये रहना, यह स्थिति उपादेय है।

इह घटरूपेण यथा प्रादुर्भवतीति पिण्डरूपेण।
व्येति तथा युगपत्स्यादेतद्द्वितयं न मृत्तिकात्वेन॥ ९२॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यका एक उदाहरण—उत्पाद व्यय ध्रौव्य धर्मोंको घटित करनेके लिए इस गाथामें उदाहरण दिया गया है। जैसे वस्तु घटरूपसे उत्पन्न होता है और पिण्डरूपसे नष्ट होता है तथा मृत्तिका रूपसे स्थिर है। एक घड़ा बनाने की प्रक्रियामें कुम्भकार मिट्टीसे घड़ा बनानेका यत्न करता है तो वहां पहिले माटीको सानकर पिण्डरूप अवस्था बनाई जाती है। वह चाकपर पिण्डरूप अवस्था रहती है। फिर चक्र घूमकर उस पिण्डको पसारकर घटरूप अवस्था बनती है। तो जिस कालमें घटरूप अवस्था बनी उस कालमें घटका तो उत्पाद है और पिण्डका व्यय है और माटीके रूपसे स्थिर है। ये तीनों ही सर्वथा एक ही कालमें हैं। लेकिन उत्पादव्यय-ध्रौव्य ये तीनों एक नहीं बन गए ! उत्पादको नाम उत्पन्न होना है और व्ययका नाम नष्ट होना है। उत्पन्न होना और नष्ट होना ये दोनों एक रूप बात नहीं है किन्तु अपेक्षासे एक ही पर्यायमें घटित दोनों हो जाते हैं। जैसे जिस समय घट पर्याय होरही है उस समय घटरूपसे उत्पाद है और पिण्ड रूपसे व्यय है। जैसे एक परिणतिमें ये दोनों बातें कही जा रही हैं वह एक परिणति है और उसमें एक साथ ही दोनों बातें हैं। साथ ही माटी तो स्थिर है ही, वह तो पूर्व पर्यायमें भी माटी थी, उत्तर पर्यायमें भी माटी बनी हुई है। तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये वस्तुमें एक समय ही होते हैं, फिर भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, इन तीनों धर्मोंका स्वरूप पृथक पृथक है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ननु ते विकल्पमात्रमिह यदकिञ्चित्करं तदेवेति ।
एतावतापि न गुणो हानिर्वा तद्विना यतस्त्विति चेत् ॥ ९३ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्यके सिद्धान्तके विरोधमें शङ्काकारकी शङ्का— अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि उत्पादव्ययध्रौव्यके सम्बन्धमें कुछ कल्पनायें जगाना केवल विकल्पमात्र है और वह व्यर्थ है । किसी भी वस्तुको मान लिया बस पर्याय है । उसमें उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों धर्म माननेसे क्या गुण है ? अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों धर्म न माने जांय तो उसमें क्या हानि है ? यह तो एक विकल्पमात्र है । एक शब्दजाल अथवा अपनी प्रतिभाका प्रभाव जमाना है । उत्पादव्ययध्रौव्यके बिना कोई हानि नहीं और उत्पादव्ययध्रौव्य मान लेनेसे कोई वस्तुमें गुण नहीं आ जाता । इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्यकी कल्पना करना व्यर्थ है, अकिञ्चित्कर है । अकिञ्चित्कर उसे कहते हैं कि हो तो कोई गुण नहीं, न हो तो कोई हानि नहीं । जो कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है उसको अकिञ्चित्कर कहते हैं । तो उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनों धर्मोंका विकल्प करना अकिञ्चित्कर है, ऐसी शङ्काकार शङ्का कर रहा है ।

तन्न यतो हि गुणः स्यादुत्पादादित्रयात्मके द्रव्ये ।
तन्निन्हवे च न गुणः सर्वद्रव्यादि शून्यदोषत्वात् ॥ ९४ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्य न मानने वाले शङ्काकारकी शङ्का समाधान— इस गाथामें उपर्युक्त शङ्काका उत्तर दिया गया है । शङ्काकारका यह कहना कि उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप वस्तुको माननेसे कोई लाभ नहीं है, उसमें कुछ भी गुण नहीं हैं । यह बात शङ्काकारकी अयुक्त है, क्योंकि उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप वस्तुको माननेसे ही लाभ है, और यदि इस त्रिगुणात्मकताको नहीं मानते हैं तो उसमें हानि है । जैसे वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य न मानें तो द्रव्यकी सिद्धि कैसे करेंगे ? शून्य हो जायगा । सत् ही न रहेगा, क्योंकि जो है वह तभी है कहलाता है जब उसमें परिणमन होते रहते हैं । उत्पादव्ययध्रौव्य बना रहे तो वह वस्तु है । इस त्रिगुणात्मकताके बिना देखिये ! परलोक कुछ रहेगा ही नहीं जीव एक भवको छोड़कर नये भवमें जन्म लेता है, इसका नाम परलोक है । अब उत्पादव्ययध्रौव्य तो माना नहीं गया तो एक ही भव का विनाश और दूसरे भवका उत्पाद तो स्वीकार है ही नहीं, तब परलोक कहाँ रहा? और जब परलोक न रहा तब सदाचारसे, तपश्चरणसे, संयमसे रहनेकी आवश्यकता ही क्या रहेगी ? उसका उपदेश व्यर्थ हो जायगा । फिर तो जिसे वर्तमानमें सुख मिलता हो जिसकी जैसे कल्पनामें, उसका वही काम हो जायगा । तो धर्म कर्म सबका लोप हो जायगा । यदि उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों धर्म पदार्थमें नहीं जाने जाते तो ? और फिर कार्यकारण भाव भी न बन सकेगा । कार्य मायने कोई नवीन अवस्था

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनना। और, कारण मायने किसी अवस्थाके कारण उस अवस्थाका व्यय होकर कार्य बनना। तो जहाँ उत्पादव्ययध्रौव्य नहीं माने गए वहाँ कार्यकारणकी व्यवस्था कुछ नहीं रह सकती। और, उत्पादव्ययध्रौव्यके बिना तो लोक व्यवहार भी जरा नहीं बन सकता। बच्चा होता, जवान होता और फिर वही बूढ़ा होता। यह बात तो स्पष्ट दिखती है। उत्पाद होना और पूर्व पूर्व पर्यायका व्यय होना और उत्पाद व्यय होते रहनेकी स्थितिमें ही ध्रौव्य रहना, यह बात तो सामने स्पष्ट ही है, इस कारण उत्पाद-व्ययध्रौव्य जो कि प्रत्यक्ष सिद्ध है उसका लोप नहीं किया जा सकता।

उत्पादव्ययध्रौव्य न माननेपर व्यवहार विलोप एवं विधि व्यवस्थालोप का प्रसङ्ग—उत्पाद न माननेका अर्थ यह है कि वस्तु अपरिणामी रहेगी। तो अपरिणामी वस्तु होनेपर अर्थात् उसमें जब कोई विकार ही नहीं माना गया, किसी भी प्रकारका परिणमन स्वीकार नहीं किया गया तब खाना पीना, कमाना रोजिगार आदिक ये सब कैसे बन सकेंगे ? कोई चीज मिटती है और कोई बात बनती है इसी आधारपर तो सारे कार्य हैं। अब वस्तुमें परिणमन कभी हो ही न सका कुछ तो फिर वह सत् क्या रहा ? और उसका फिर लेन देन व्यवहार प्रयोग भी क्या रहा ? तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये अंश धर्म न माननेपर कोई पदार्थ सत् ही नहीं रह सकता है। ये तीन धर्म वस्तुमें स्वरूपतः गुम्फित हैं। और इसी आधारपर बात तो यों माननी ही पड़ेगी ना और यह शासन या प्रकाश मिला नहीं तो यही चीज किसी अन्यरूपमें लोक व्यवहारमें प्रसिद्ध हो जाती है। जैसे कुछ लोग मानते हैं कि कोई एक देवता इन सारी सृष्टिको करता है और एक देवता इन सारी सृष्टियोंका प्रलय कर देता है और एक देवता इस समस्त जगतकी रक्षा करता है। ये तीन प्रकारके देवताओंकी कल्पना इसी आधारपर ही तो की गई है। वस्तुमें उत्पत्ति होना, व्यय होना और सत्ता बना रहना ये तीन बातें स्वभावतः पड़ी हुई हैं। अब जो वस्तुके इस शीलपर दृष्टि नहीं देते और उन्हें समझना तो पड़ेगा ही इस उत्पन्न होने व्यय होने और बने रहनेकी बातको, तो वहाँ किसी देवताके द्वारा किया गया है ऐसी लोक प्रसिद्धि बन गई है। पर वह देवता वस्तुतः वही स्वयं वस्तुमें रहने वाला धर्म है, सत् पदार्थ है और उसमें ये तीन गुण हैं। इन्हीं गुणोंको देवताके रूपमें कुछ लोगोंने समझ लिया है। तो उत्पादव्ययध्रौव्य ये तीनों धर्म न माननेपर न सत् पदार्थकी सिद्धि है, न परलोककी सिद्धि है और न कार्यकारण आदिक व्यवस्थाकी सिद्धि है।

परिणामाभावादपि द्रव्यस्य स्यादनन्यथावृत्तिः।
तस्यामिह परलोको न स्यात्कारणमथापि कार्यं वा ॥ ९५ ॥

परिणमनके न माननेपर दोष बताते हुए परिणमनका समर्थन—वस्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का परिणाम न माननेपर क्या क्या दोष आते हैं ? उनका विवरण इस गाथामें किया है। एक जीव द्रव्यको ही दृष्टान्तमें ले लो। परिणाम जब नहीं मानते तो इसका अर्थ है जीवमें भी कोई परिणमन न हो और परिणमन न होनेका अर्थ है कि उस पदार्थका अन्य प्रकारसे वर्तन न होगा। अर्थात् वह पदार्थ सदा एक सदृश रहेगा। परिणमन भी अनेक ऐसे होते हैं कि सदृश होनेपर भी सदृश परिणाममें सर्वथा एकता नहीं है। सदृशता है लेकिन परिणाम न माननेपर तो एकता माननी होगी। वह वही है, रंच भी वहाँ परिवर्तन या परिणमन नहीं है। तो द्रव्यमें परिणमन न माननेपर एक दोष बतानेके लिए दृष्टान्त जीवका दिया जा रहा है। जीव द्रव्यमें परिणमन तो माना नहीं। तो पुण्य पापका कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता। और यहाँ दिख रहा है सब कुछ भेद। इस जगतमें कैसे कैसे दुःखी मनुष्य हैं। पशु पक्षी कीट आदिक हैं। ये सब पापके फल हैं और यहाँ ही कितने ही लोग खुश नजर आते हैं। इज्जतवान, धनवान, विद्यावान और वे अपने कुछ अच्छे विचार भी रखकर कुछ तृप्तसे रहा करते हैं, ये सब पुण्यके फल हैं लेकिन जीवद्रव्यमें परिणमन न माननेपर ये पुण्य पाप के फल कहाँसे होंगे और परिणमन जहाँ है ही नहीं वहाँ क्या भाव, क्या पुण्य, क्या पाप, कुछ भी नहीं ठहर सकता। और, फिर मोक्षके लिए प्रयत्न करना बिल्कुल व्यर्थ है। जब संसार नहीं, दुर्गति गमन नहीं, जन्म मरण नहीं, पुण्य पाप नहीं, क्लेश नहीं, कुछ जरा भी तरंग नहीं है तो फिर किसका छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न किया जा रहा है ? तब मोक्षके लिए उपाय करना भी व्यर्थ हो जायगा। और, यदि नहीं माना जाता तो क्या कार्य और क्या कारण होगा ? कैसा भाव करनेसे कैसी आयुका बंध होता है। कैसा कर्मोदय होनेपर जीवमें किस प्रकारकी कषायोंकी निस्पत्ति होती है ? ये सब कार्यकारण भाव न रह सकेंगे, क्योंकि जहाँ जरा भी अदल बदल नहीं रंच भी परिणमन नहीं माना जाता वहाँ कार्यकारण भावके लिए संसार ही क्या है ? तो यों वस्तुमें परिणाम न माननेपर अर्थात् उत्पाद व्यय न माननेपर उसमें न सत्त्व रहेगा न परलोक रहेगा, न मोक्षका उपाय रहेगा, न कार्य कारण भाव रहेगा, और न लोकव्यवहार भी रह सकेगा। इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीनों धर्मोंका मानना अत्यन्त आवश्यक है।

परिणामिनोऽप्य भावत् क्षणिकं परिणाममात्रमिति वस्तु।
तन्न यतोऽभिज्ञानान्नित्यस्याप्यात्मनः प्रतीतित्वात् ॥ ९६ ॥

परिणामीके न माननेपर दोष बताते हुए परिणामीका समर्थन—यदि पदार्थको परिणामी नहीं माना जाता तो उसका अर्थ यह होगा कि वस्तु केवल परिणाम मात्र है अर्थात् क्षणिक है, केवल प्रतिसमयका परिणमन। प्रत्येक परिणमन वही वस्तु हो जायगा और परिणमन प्रत्येक क्षणिक है ही तो वस्तु भी क्षणिक बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायगा। वस्तु परिणमन तो करता है ही लेकिन वस्तुमें जो अनेक परिणमन होते हैं वे सब परिणमन किसी एकके होते हैं ना ? तो वह एक द्रव्य परिणामी कहलाता है। जो परिणमें सो परिणामी। और, जो प्रतिसमयका परिणमन है, जिन रूपोंसे यह पदार्थ परिणमा है वह प्रतिसमयका परिणमन परिणाम कहलाता है। तो परिणाम ही माननेपर परिणामीकी स्वीकारता न की जानेपर वस्तु परिणाममात्र ठहरेगी और परिणाममात्र होनेसे क्षणिक हो जायगी लेकिन ऐसा तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञान द्वारा आत्माकी नित्यता भी जानी जा रही है। किसीके सम्बन्धमें जो यह ज्ञान होता है कि यह वही जीव है ऐसा प्रत्यभिज्ञान तब ही तो सम्भव है जब कि वह नित्य हो। जिसे कल देखा था वही है यह तो कलमें और आजमें नित्यता रही ना, तो यह ज्ञान बन सका। तो पदार्थ अनादिसे अनन्त तक नित्य ही रहता है। तो यदि केवल परिणाममात्र माना जाय और परिणामी न माना जाय तो ये ज्ञान जो हो रहे हैं, जिनमें प्रत्यभिज्ञान होता है, क्या यह ज्ञान मिथ्या है ? यह ज्ञान मिथ्या नहीं है। इन ज्ञानों से भी सिद्ध होता है और वस्तुके स्वरूपकी चर्चासे भी यही सिद्ध होता है कि परिणामी और परिणाम दोनों रूप वस्तु है और उसे स्पष्ट समझनेके लिए यों समझ लीजिए कि द्रव्य और पर्याय दोनों ही मानने होंगे। द्रव्य तो नित्य है और उसकी पर्याय अनित्य है। जो सत् है उसकी ऐसी मुद्रा होगी कि वह निरन्तर अपना ही परिणमन बनाता रहे। तात्पर्य यह हुआ कि पदार्थ अपने वस्तुत्वको कभी नहीं छोड़ता, इस कारण तो वह नित्य है और वह सदा नई-नई अवस्थाओंको धारण करता है इस कारण अनित्य है। तो पदार्थ न सर्वथा नित्य रहा न अनित्य। अब यहाँ शंकाकार द्रव्यके दो लक्षण सुनकर शङ्का करता है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यं लक्षणमेकं ययुक्तमिह पूर्वं।
वाक्यान्तरोपदेशादधुना तद्बाध्यतेत्विति चेत् ॥ ९७ ॥

द्रव्यके उक्त दो लक्षणोंने विरोधकी आरेका—शङ्काकार यहाँ शङ्का करता है कि पहिले द्रव्यका लक्षण तो यह कहा गया था गुणपर्ययवत्द्रव्यं। द्रव्य गुण पर्याय वाला है। और, इसीका खुलासा करनेके लिए गुणपर्यायका समुदाय द्रव्य है, गुण समुदाय द्रव्य है, समगुणपर्याय द्रव्य है यह भी कहा था। वह सब एक ही प्रकारके लक्षणोंसे सम्बन्धित है। तो पहिला जो लक्षण कहा गया था यह—गुणपर्यायवत् द्रव्यं और कुछ अन्य वाक्योंसे उसका लक्षण किया जा रहा है यह कि उत्पादव्यय-ध्रौव्य युक्त सत् है। तो पहिलेका जो लक्षण है वह बाधित हो गया है। बादमें जो लक्षण किया जाता है उस लक्षणसे इस वाक्यान्तरके उपदेशसे पूर्वकथित लक्षण बाधा जायगा। तो पूर्वोक्त लक्षण सही न ठहरा क्योंकि अब लक्षण यह बताया जा रहा है कि जो सत् है सो द्रव्य है। और, सत् उसे सकते हैं जो उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो अब इस लक्षणसे पूर्वलक्षण बाधित होनेसे गुणपर्ययवत्द्रव्यं, यह लक्षण न ठहरा, किन्तु केवल यह लक्षण रहा कि जो उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त हो सो द्रव्य है ? इस शंका के समाधानमें कहते हैं—

तन्न यतः सुविचारादेकोर्थो वाक्ययोर्द्वयोरेव ।
अन्यतरं व्यादितिचेन्न मिथोभिव्यञ्जकत्वाद्वा ॥ ९८ ॥

द्रव्यके दोनों लक्षणोंको संगत व अभिव्यञ्जक बताते हुये उक्त आरेका का समाधान—समाधानमें कहते हैं कि जो दो लक्षण द्रव्यके बताये गए हैं गुणपर्यय वत् द्रव्यं और सत् द्रव्यलक्षणं उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् । इन दोनों लक्षणोंमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि दोनों वाक्योंका अर्थ एक ही है । यदि ऐसा सुनकर भी कोई यह कहे कि जब दोनों लक्षणोंका एक ही अर्थ है तो दोनोंके कहनेकी जरूरत क्या थी? तो उसका उत्तर सुनो ! दो लक्षण कहनेमें वस्तुके स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन होजाता है, पहिली बात ! दूसरी बात यह है कि पहले जो लक्षण किया गया था गुणपर्ययवत् द्रव्यं उसको ही स्पष्ट और पुष्ट करने वाला उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और वस्तुके स्पष्ट निर्णय इन दोनों लक्षणोंसे होता है और ये दोनों परस्पर सहयोगी हैं । उत्पाद-व्ययध्रौव्यकी बातका समर्थन गुणपर्यायने किया और गुणपर्यायके स्वरूपका समर्थन उत्पादव्ययध्रौव्यने किया । इस कारण दोनों लक्षणोंका कहना युक्त है और इन दोनों में कोई विरोध नहीं है । कैसे विरोध नहीं है ? और कैसे एक दूसरेका सहयोग करते हैं ? इस बातको स्पष्ट अगली गाथामें कह रहे हैं ।

तद्दर्शनं यथा किल नित्यत्वस्य च गुणस्य व्याप्तिः स्यात् ।
गुणवद्द्रव्यं च स्यादित्युक्तो ध्रौव्यवत्पुनः सिद्धम् ॥ ९९ ॥

द्रव्यके दोनों लक्षणोंकी संगतताके प्रसङ्गमें गुणकी नित्यत्वके साथ व्याप्तिका समर्थन—गुणपर्ययवत् द्रव्यं इस लक्षणमें दो बातें बताई गई हैं । गुण और पर्याय और उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् । इनमें भी दो बातें कही गई हैं । एक उत्पादव्यय और दूसरी ध्रौव्य । चूंकि उत्पादव्यय दोनोंका अनित्यपनेसे सम्बन्ध है, उत्पाद हुआ तो इसका अर्थ है कि वस्तु अनित्य है । कुछ मिटा, कुछ ही हुआ, चीज बनी, जो पहिले न था और व्यय कहा तो उसमें भी अनित्यताका संकेत है । विलीन हो गया, अब वह न रहा, इस कारण उत्पादव्ययको एक कोटिमें रखें और ध्रौव्यको दूसरी कोटिमें रखें । अब यहाँ यह देखलो कि उत्पादव्ययके साथ व्याप्ति है, पर्याय और ध्रौव्यके साथ व्याप्ति है गुणकी । नित्यपना और गुण इन दोनोंकी व्याप्ति है । गुण कहनेसे नित्यपनेका बोध होता है इसलिए गुणवान द्रव्य है, ऐसा कहनेसे अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह ध्वनित हो जाता कि नित्य द्रव्य है, ध्रौव्यवान द्रव्य है। वस्तुका स्वरूप समझनेकी दिशामें लक्षणमें तत्त्वरूपता तो बदली, पर स्वरूप नहीं बदला। वस्तु ध्रौव्यवान है, ऐसा कहनेमें इस ओर दृष्टि गई कि वस्तु सदाकाल रहता है, पर उसकी विशेषता समझमें आई गुणवान द्रव्य है, यों कहनेपर अर्थात् सदा वस्तु रहती है तो वस्तुमें स्वरूप स्वभाव सदा रहता है, वह ही गुण कहलाता है। जो ध्रौव्यवान द्रव्य है ऐसा कहनेसे गुणवान द्रव्य है, यह सिद्ध हुआ। तो यों ये शब्द परस्पर एक दूसरेके अभिव्यञ्जक हैं। कथंचित् नित्यको ही तो ध्रौव्य कहते हैं और गुणोंसे कथंचित् नित्यता सिद्ध करनेके लिए द्रव्यको ध्रौव्यवान कहा है। गुणवान द्रव्य है, इसका अर्थ हुआ कि वस्तु सदाकाल रहता है। सदाकाल पदार्थ रहा, इतने कथनमात्रसे कुछ तत्त्व जानने पर गुणके कथनसे उस तत्त्वमें विशेषताका बोध किया। पदार्थ है, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं और उन शक्तियोंसे पदार्थ तन्मय है। शक्तियाँ नित्य हैं, पदार्थ नित्य हैं, यों गुणसे यह बात समझी गई।

पर्यायकथनसे उत्पाद व्ययका समर्थन तथा द्रव्यके दोनों लक्षणोंमें सहयोगिताका समर्थन—पर्यायोंसे बात समझी जाती है उत्पाद व्ययकी। पदार्थ उत्पाद व्यय स्वरूप है, तो उत्पन्न होना और नष्ट होना यह बात आत्मामें पायी जाती है। कोई नवीन पर्याय ही उत्पन्न होता है, पदार्थ उत्पन्न नहीं होता। पदार्थ उत्पन्न हुआ इसका अर्थ तो यह होगा कि पहिले पदार्थ असत् था, अब सत् हुआ है। किन्तु असत् कभी सत् हो ही नहीं सकता, इस कारण पदार्थका उत्पाद नहीं, किन्तु पदार्थका सर्वथा उत्पाद और अवस्थाका सम्बन्ध पर्यायसे है। तो दोनों लक्षणोंमें जो दो कोटियाँ रखी गई हैं वे एक दूसरेका समर्थक होनेसे वस्तुके स्वरूपके परिचयमें एक विशिष्ट मदद ही मिलती है, इस कारण दोनों लक्षणोंका कहना युक्त है और इसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं है, इस कारण तत्त्वार्थसूत्रमें भी दो लक्षणोंको एक ही प्रकरण में रखा गया है। और, इस ग्रन्थमें दो ही लक्षण बताये हैं, किन्तु प्रथम लक्षणके उत्तरोत्तर अभेद बुद्धिमें ही लक्षणका समर्थन किया गया है। गुणपर्याय वाला द्रव्य है ऐसा कहनेसे कोई यह समझ ले कि जैसे धनवान पुरुष है। यहाँ धन और पुरुष न्यारे-न्यारे हैं, ऐसे ही गुणपर्याय और द्रव्य ये न्यारे-न्यारे हुए। ऐसी समझको टालनेके लिए उसका स्पष्टीकरण किया है कि गुणपर्याय समुदायः द्रव्यं। गुणपर्याय का समुदाय द्रव्य है इस शब्दमें कुछ अभेदकी बात कह लिया फिर भी भेद समझाने की गुंजाइश नहीं आती है इस कारण कहना पड़ा कि गुणवत् द्रव्यं। यहाँ पर भी सिद्धान्तसे तो तन्मयता सिद्ध होती है, पर भेदका अर्थ यह भी कोई लगा सकता है। उस भेदको टालनेके लिए अन्तमें कहा है—समगुणपर्याय द्रव्य है। इन सबमें गुणपर्ययवत् द्रव्यंकी ध्वनि है और यहाँ दूसरा लक्षण कहा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है। इन दोनोंमें विरोध नहीं है। अतः दोनों लक्षणोंका कहना उचित ही है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपि च गुणाः संलक्ष्यास्तेषामिह लक्षणं भवेत् ध्रौव्यम् ।
तस्माल्लक्ष्यं साध्यं लक्षणमिह साधनं प्रसिद्धत्वात् ॥ १०० ॥

गुण और ध्रौव्यमें लक्ष्यलक्षणरूपता व साध्यसाधनरूपता—गुणपर्यायवान द्रव्य है और उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् द्रव्यका लक्षण है, इन दोनों लक्षणोंमें समता समन्वय और सहयोगिताकी बात बतायी जा रही है। यहाँ यह समझना चाहिए कि गुण तो लक्ष्य है और ध्रौव्य लक्षण है। उत्पादव्ययध्रौव्यमें दो कोटियाँ हैं—एक उत्पादव्ययकी और एक ध्रौव्यकी। और, गुणपर्ययवान द्रव्य है। यहाँ दो कोटियाँ स्पष्ट ही हैं गुण और पर्याय। तो गुणका लक्षण ध्रौव्य है। ध्रौव्य हुआ लक्षण और गुण हुआ लक्ष्य। जिसको समझना है, सिद्ध करना है उसे कहते हैं लक्ष्य और जो साधन है, जिसके द्वारा सिद्ध किया जायेगा उसे कहते हैं लक्षण। तो गुणपर्ययवान द्रव्य है यह तो लक्ष्य है और उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त सत् है यह लक्षण है। जिस प्रकार गुण लक्ष्य है और उत्पाद व्यय वाला है, यह उसका लक्षण है। तो इन दोनोंमें लक्ष्य लक्षणका सम्बन्ध है और इसी लिए दोनोंको कहना युक्त है। तब गुणपर्ययवत् द्रव्यसे कोई समझ न सका। गुणपर्याय भी क्या चीज है, यह न जाना जा सका तो उसको व्यक्त करनेके लिए द्वितीय लक्षण कहा गया उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त द्रव्य है। इसमें उत्पादव्यय लक्षण है और पर्यय लक्ष्य है और ध्रौव्य लक्षण है, गुण लक्ष्य है। यहाँ तक गुणोंके सम्बन्धमें तुलनात्मक ढंगसे ध्रौव्यका सम्बंध बताया। अब पर्याय के सम्बन्धमें कहते हैं।

पर्यायाणामिह किल भङ्गोत्पादद्वयस्य वा व्याप्तिः ।
इत्युक्तं पर्ययवद् द्रव्यंसृष्टिव्ययात्मकं वा स्यात् ॥ १०१ ॥

पर्यायकी अनित्यत्वके साथ व्याप्तिका कथन—पर्यायोंकी उत्पाद व्ययके साथ व्याप्ति है अर्थात् पर्यायके कहनेसे उत्पाद और विनाशका बोध होता है, इस कारण पहिले लक्षणमें जहाँ कहा गया कि पर्ययवान द्रव्य है वहाँ यह सिद्ध हुआ कि उत्पाद व्यय वाला द्रव्य है। पर्याय परिणमनको कहते हैं और परिणमन उत्पाद व्यय बिना सम्भव नहीं है। कोई नवीन परिणमन हो तो उसे उत्पाद कहा गया और नवीन परिणमन होनेके समय पूर्व परिणमन विलीन होते ही हैं तो पूर्व पर्यायके विलीन होनेको यहाँ व्यय शब्दसे कहा है। नवीन अवस्थाको उत्पाद और पूर्व अवस्थाका व्यय हुए बिना परिणमन नहीं हो सकता। मानो नवीन अवस्था तो बनती हो और पुरानी अवस्था विलीन न होती हो तो परिणमन एक साथ एक द्रव्यमें नहीं रहते। प्रतिसमय एक ही परिणमन है तो परिणमनकी पर्यायकी व्याप्ति उत्पाद व्ययके साथ है, तब जब कभी यह कहा जाय कि पर्यायवान द्रव्य है तो उसका अर्थ यही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लेना चाहिए कि उत्पादव्ययस्वरूप द्रव्य है।

द्रव्यस्थानीया इति पर्यायाः स्युः स्वभाववन्तश्च ।
तेषां लक्षणमिव वा स्वभाव इव वा पुनर्व्ययोत्पादम् ॥ १०२ ॥

पर्याय और उत्पादव्ययमें लक्ष्यलक्षणरूपता—गुण पर्ययवान द्रव्य है और उत्पादव्ययध्रौव्यवान द्रव्य है। इन दोनों लक्षणोंके कथनसे गुणोंमें तो यह बात सिद्ध हुई कि गुण ध्रुव है। शक्ति और शक्तिवान दोनों ध्रुव हैं, स्वभाव और स्वभाववान दोनों ध्रुव हैं और पर्यायोंके कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि परिणमन द्रव्यमें ही होता है और परिणमन एक अंश है। जैसे—कालकृत अंश कहा। पदार्थका एक कालमें जो एक परिणमन है वह कालकृत अंश है। तो पर्यायी द्रव्य स्वकीय है, द्रव्यमें ही उत्पन्न होता है, पर्यायें द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि पर्यायें स्वभाववान हैं, क्योंकि वह द्रव्य स्थानीय है। तो द्रव्यमें क्या है? कोई स्वभाव, कोई शक्ति उसका जो व्यक्त रूप है वही तो परिणमन है। जब पर्याय द्रव्य सजातीय हैं और स्वभाववान हैं तो उनका लक्षण और स्वभाव बताना आवश्यक हो जाता है। तो इस सम्बन्धमें कोई यह जिज्ञासा करे कि उनका लक्षण और स्वभाव क्या है? तो उनको समझानेके लिये यह कहना ही पडेगा कि उत्पादव्यय यह तो पर्यायोंका लक्षण है। जिनका उत्पाद और व्यय होता है वे पर्यायें हैं। तो पर्यायोंके लक्षणकी तरहसे उत्पाद व्ययका वर्णन किया जायगा अथवा पर्यायोंका स्वभाव क्या है? ऐसी जिज्ञासा होनेपर कहा जायगा कि पर्यायोंका स्वभाव उत्पाद और व्यय है। तो यों अब पर्यायोंका उत्पादव्ययके साथ लक्ष्य लक्षण सम्बन्ध रहा और स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध रहा। इसी तरह गुण और ध्रौव्य इन दोके मुकाबलेमें इनकी परीक्षा की जाय तो गुण लक्ष्य रहा, ध्रौव्य लक्षण रहा। और, जब यह पूछा जाय कि गुणोंका स्वभाव क्या है? तो उत्तर मिलेगा कि गुणका स्वभाव ध्रुवपना है। तो यों गुणस्वभाव स्वभाववान हुआ और ध्रौव्य स्वभाव हुआ। यों गुण और ध्रौव्यके साथ लक्ष्य लक्षण एवं स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध है इसी प्रकार पर्यायका उत्पादव्ययके साथ लक्ष्य लक्षण एवं स्वभाव स्वभाववान सम्बन्ध है।

'गुणपर्ययवद् द्रव्यं' तथा 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त' में लक्ष्यलक्षणसम्बन्ध का दिग्दर्शन—द्रव्यके उस पूर्वकथित समूचे लक्षणका और अग्रिम कथित उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्त वाक्यका परस्परमें क्या सम्बन्ध है? तो लक्ष्य लक्षण सम्बन्ध है। गुण पर्ययवान द्रव्य है ऐसा कहकर। तो अब यहाँ गुणपर्ययवान द्रव्य है, यह तो हुआ अभिव्यञ्जक याने जिसके सम्बन्धमें कुछ बात प्रकट करना है और उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्त सत् यह हुआ अभिव्यञ्जक, इसने गुण पर्यायकी पहिचान करा दी। तो इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दोनों लक्षणोंमें अभिव्यञ्जन और अभिव्यञ्जक भावका सम्बन्ध है और इस ढङ्गसे इसमें साध्य साधन सम्बन्ध है। गुणपर्ययवान द्रव्य है, यह तो साध्य हुआ और इसको सिद्ध किया उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् है इसने। तो यों गुणपर्ययवान द्रव्य है, यह तो मुख्य लक्षण है और एक आधारभूत लक्षण है जिससे इसके विस्तारका वर्णन होगा। और, उस लक्षणको प्रकट करनेके लिए कहा है—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्। जो उत्पादव्ययवान है वह तो पर्याय है और जो ध्रौव्यवान है वह गुण है। पदार्थमें दोनों ही बातें हैं। पदार्थ सदा रहता है और प्रति समय परिणमता रहता है। तो जो सदा रहनेकी बात है वह तो हुआ गुणकी दृष्टिसे कथन और जहां परिणमनकी बात है वह है पर्याय दृष्टिसे कथन।

दोनों लक्षणोंसे सामान्य व विशेष परिचय—प्रत्येक पदार्थ है और परिणमता रहता है पदार्थका यह सामान्य परिचय है। अब किस प्रकारसे है ? किस प्रकारसे परिणमता है इसका सम्बन्ध असाधारण धर्मसे है। जैसे जीव है तो वह ज्ञान रूपसे है और ज्ञानरूप परिणमता है। अब इस असाधारण धर्मकी दृष्टिसे जो भी परिणमन हुआ वह ज्ञान परिणमनरूपसे समझा जायगा। जैसे दुःख हुआ तो हुआ क्या वहाँ ? ज्ञानका उस प्रकारका परिणमन हुआ। जिसमें दुःखका अनुभव हुआ, सुख हुआ तो हुआ क्या? ज्ञानका कल्पनाका उस प्रकारका परिणमन हुआ। जो अपनेको सुखी समझा गया। और, जब वास्तविक स्वाधीन सहज आनन्दमें लीन होनेकी स्थिति आती है तो वहाँ होता क्या है ? ज्ञान गुणका उस प्रकारका परिणमन होता है। तो यों असाधारण धर्मरूपसे है जीव और उस रूपसे परिणमता है। तो सभी पदार्थ उस साधारणरूपसे अस्तित्व और साधारणरूपसे परिणमन, यह तो पदार्थपनेके नातेसे बात है। और जाति अपेक्षा उसमें एक विशेषता और बनती है कि वह किस रूपसे है और किस रूप परिणमता है? जैसे जीव ज्ञानरूपसे है और ज्ञानरूपसे परिणमता है। तो यों अस्तित्व होना और परिणमन होते रहना यह द्रव्यमें नियमतः हुआ करता है। तो उसी बातको व्यक्त करनेके लिए प्रथम तो द्रव्यका लक्षण कहा गया, गुणपर्यायवान द्रव्य है और उस गुणपर्ययको प्रकट समझानेके लिए कहा गया कि उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त द्रव्य है। यों दोनो लक्षणोंमें लक्ष्य लक्षण सम्बन्ध स्वभाव स्वभाववान है सम्बन्ध अभिव्यञ्ज अभिव्यञ्जक भाव सम्बन्ध और साध्य साधन सम्बन्ध है। इस प्रकार द्रव्यका जो लक्षण ८ वें छंदमें बताया गया है उसके सम्बन्धमें वर्णन किया गया। अब इसी प्रसंगमें सम्बन्धित गुणके निरूपण करनेका उपक्रम किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com